RNI क्र. 50309/85 डाक पंजीयन क्र. म.प्र./261/भोपाल/2012-14 प्रकाशन तिथि: 26 नवम्बर

बाल विज्ञान पत्रिका दिसम्बर 2014

चकमक

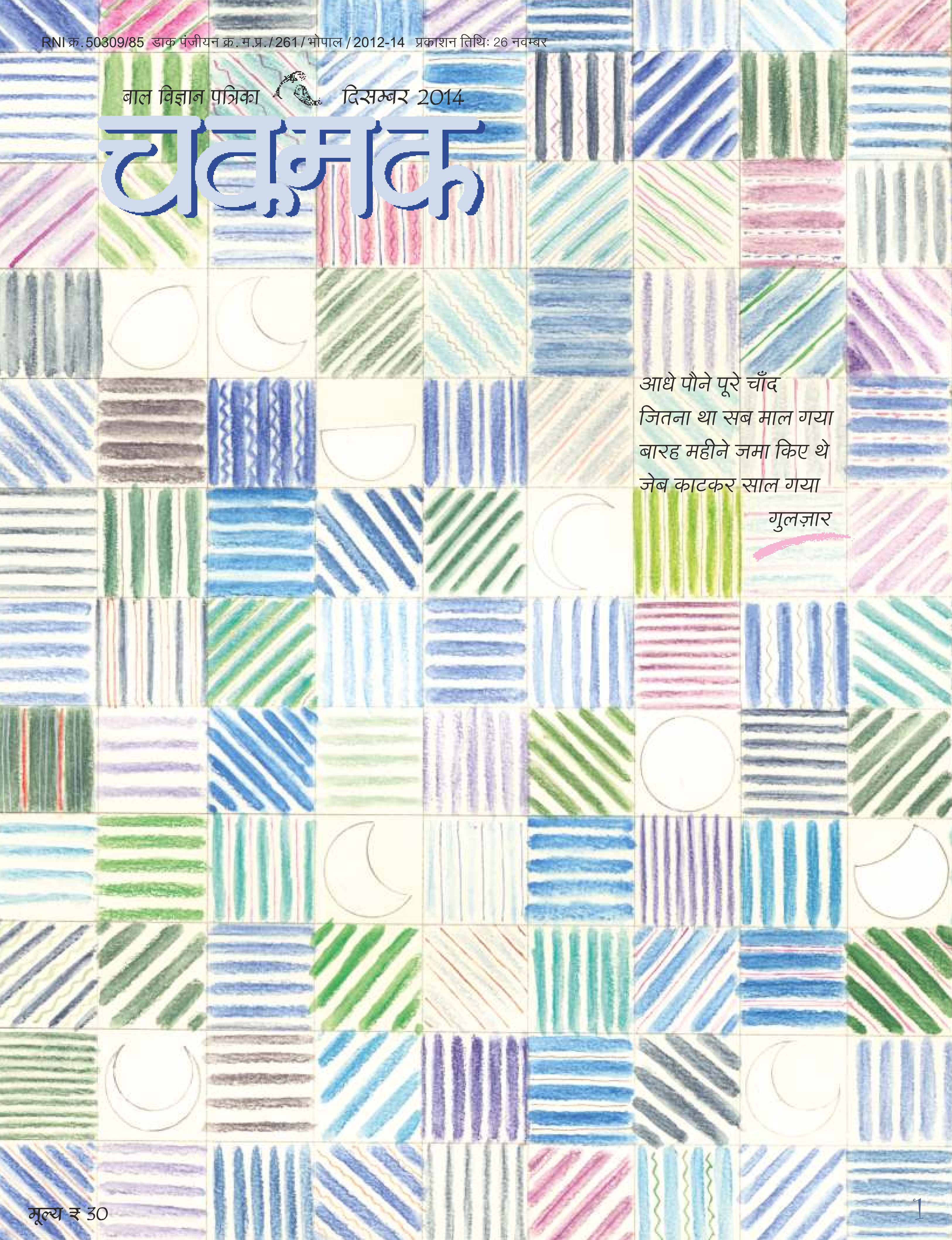

आधे पौने पूरे चाँद
जितना था सब माल गया
बारह महीने जमा किए थे
जेब काटकर साल गया

गुलज़ार

मूल्य ₹ 30

बचपन का सिर

एक गाइड था। वह लोगों को संग्रहालय की मूर्तियों के बारे में, सिक्कों के बारे में बताता। उसके पास संग्रहालय की हर चीज़ के किस्से थे। जो उसने ज़रूरत के हिसाब से बनाए थे। एक दिन एक आदमी गाइड की तलाश में उसके पास जा पहुँचा। गाइड थोड़ी देर इधर-उधर की कहानियाँ सुनाता रहा। संग्रहालय में एक जगह काँसे का बना बुद्ध का सिर रखा था। पर्यटक ने पूछा, "ये क्या है?" गाइड बोला, "बुद्ध का सिर है।" "बुद्ध का सिर?" "हाँ, बुद्ध का सिर।" "सचमुच का?" "हाँ, सचमुच का।"

पर्यटक बड़ी देर तक बुद्ध को देखता रहा। और संग्रहालय के दूसरे कमरे में चला गया। दूसरे कमरे में बुद्ध की वैसी ही एक और मूर्ति रखी थी। पर यह सिर पहली मूर्ति से छोटा था। पर्यटक ने हैरत से गाइड से पूछा, "वो बुद्ध का सिर था तो ये किसका सिर है?" "ये भी बुद्ध का ही सिर है।" गाइड ने बेझिझक कहा। पर्यटक अब तक चकरा गया था। "असल में ये बुद्ध के बचपन का सिर है।" गाइड ने मासूमियत से कहा।

प्रस्तुति संजय भारती

चित्रः प्रशान्त सोनी

बाल विज्ञान पत्रिका
चकमक
अंक 339 दिसम्बर 2014

4 बोली रंगोली
8 एक आसमान, चार सूरज
9 एक था हाजी एक था नाजी
10 एक लोककथा
12 कोहनी का पाठ
14 एक किनारे की नदी - इच्छामति
17 पेड़ ने छींका
18 पत्ते की बात-2
21 दरजिन
22 मंगल दी गल
24 टूटा अँगूठा, कंजूस चाचा, झाड़-फूँक और विशाल भारद्वाज
30 एक पंजा बाघ का
33 माथापच्ची
34 इस बारिश में
37,40,41 मेरा पन्ना
38 एक बूँद का सफर...
43 चित्रपहेली
44 तितलियों के पंख

हाशिए के चित्र
शिवांगी सिंह

सम्पादन
सुशील शुक्ल
शशि सबलोक

सहायक सम्पादक
कविता तिवारी
मिताली अहीर

विज्ञान सलाहकार
सुशील जोशी

आवरण चित्र
शुद्धसत्व बसु

डिज़ाइन
दिलीप चिंचालकर

इस अंक में

22

मंगल की
पहली तस्वीर।
वहाँ का नज़ारा
बेहद सुन्दर है।

24

अगर मैं उस
हिन्दी मीडियम
स्कूल में ना पढ़ा
होता तो ना ही
मेरी यह ज़बान
होती और ना ही
मैंने वो दुनिया
देखी होती।

10

नीले, कोरे आसमान पर भरही चिड़िया
लहराती हुई गा रही थी।
हवा में डोलती, कभी ऊँची, कभी नीची
लहर-सी बनाती वह गाती रही...
गाती रही...।

17

पेड़ ने सोचा
कि अब मैं भी
छींकूँगा।

30

मैं निरा अनाड़ी
साबित हुआ हूँ।
दरबार को अफसोस था
कि उनका बेटा
बिल्लियों को
समझ ही नहीं पाया।

4-5

आधे पौने पूरे चाँद
जो भी था सब माल गया
बारह महीने जमा किए
जेब काट के साल

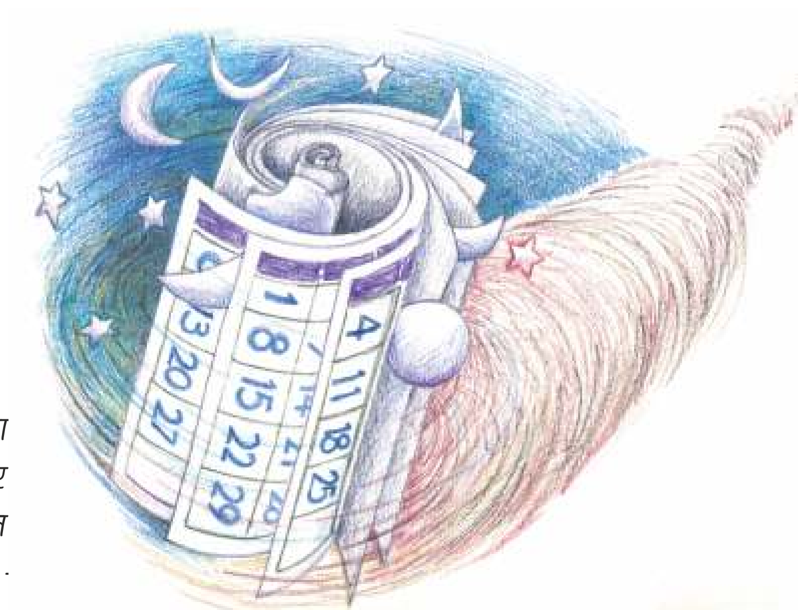

विप्रो एप्लाइंग थॉट इन स्कूल्स के वित्तीय सहयोग से विकसित

वितरण
झनकराम साहू

सहयोग
वरुण ग्रोवर
प्रभात
मिहिर
कमलेश यादव

सदस्यता शुल्क

एक प्रति:	30.00	(व्यक्तिगत)
	50.00	(संस्थागत)
वार्षिक:	300.00	(व्यक्तिगत)
	500.00	(संस्थागत)
तीन साल:	800.00	(व्यक्तिगत)
	1350.00	(संस्थागत)
आजीवन:	4000.00	(व्यक्तिगत)
	6000.00	(संस्थागत)

सभी डाक खर्च हम देंगे।
चन्दा (एकलव्य के नाम से बने)
मनीऑर्डर/चैक से भेज सकते हैं।
भोपाल के बाहर के चैक में
80.00 रुपए अतिरिक्त जोड़ें।

एकलव्य
ई-10, शंकर नगर, बीडीए कॉलोनी, शिवाजी नगर,
भोपाल, म.प्र. 462 016
फोन: (0755) 4252927, 2550976, 2671017
फैक्स: (0755) 2551108
e mail - chakmak@eklavya.in
e mail - circulation@eklavya.in
www.chakmak.eklavya.in
www.eklavya.in

दोस्तो,

बोली रंगोली के इस बेहद दिलचस्प सफर की यह आखिरी कड़ी है। यह बोली रंगोली का भले ही आखिरी महीना है पर हमें उम्मीद है कि गुलज़ार साब से तुम्हारी मुलाकात का एक और सिलसिला चकमक में जल्द ही शुरू होगा।

आकांक्षा,
आठवीं, विद्या ज्ञान स्कूल, सीतापुर, उ. प्र.

बोलीरंगोली

तुम्हारे अन्दाज़न डेढ़ हज़ार चित्र मिले। ज़्यादातर में चाँद था। कई चित्रों में चोर को दिखाना भी दिलचस्प था। गुलज़ार साब के पसन्दीदा पाँच यहाँ पेश हैं। अन्य 11 चित्र भी हमें बहुत पसन्द आए। इन्हें तुम पेज 6-7 में देखोगे।

मेरा पन्ना के लिए तुम्हारे पत्रों, रचनाओं का हमें इन्तज़ार रहेगा। अगर ज़रूरत पड़ी तो इसके पन्ने भी बढ़ाएँगे। तुम्हारे पत्रों का खासतौर पर हमें इन्तज़ार रहेगा। लिखोगे न?

पता तो तुम्हें मालूम है ही -
सम्पादक - चकमक,
ई -10, शंकर नगर, शिवाजी नगर,
भोपाल -16
फोन - 0755-4252927

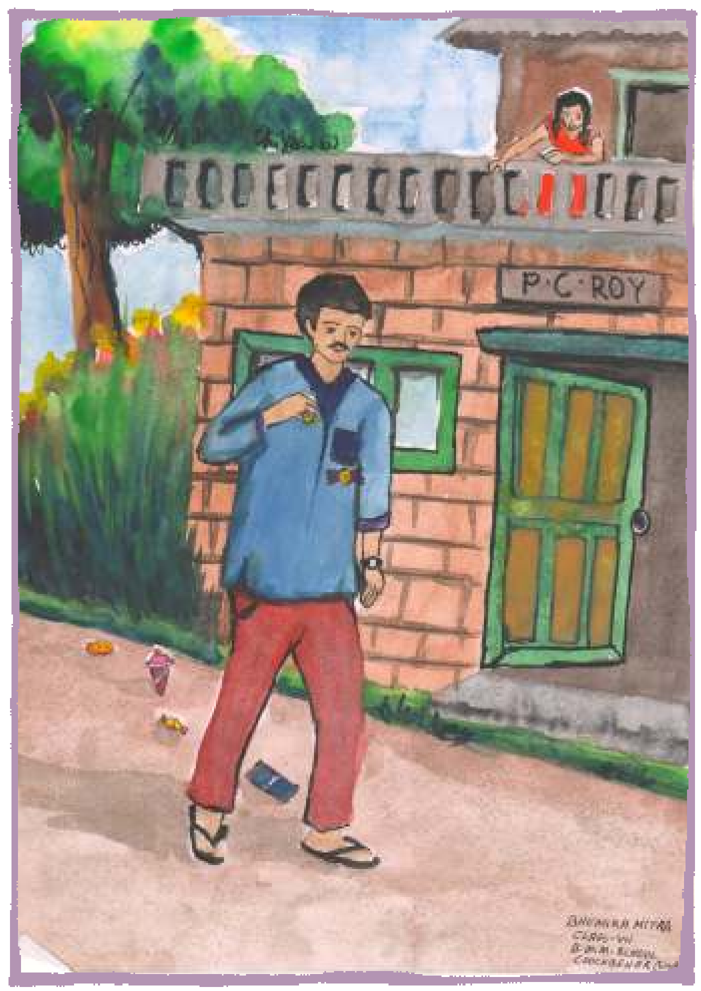

भूमिका मित्रा,
सातवीं, बीबीएम स्कूल, कूच बिहार, प. बंगाल

पहले पाँच

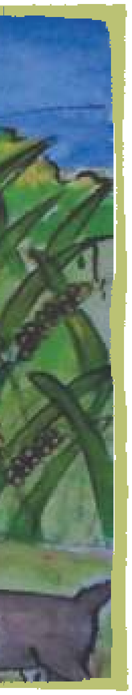

ऋचा,
सातवीं, विद्या ज्ञान स्कूल
सीतापुर, उ. प्र.

सीता एन.,
पाँचवीं, आनन्द विहार स्कूल,
भोपाल. म.प्र.

आधे पौने पूरे चाँद
जो भी था सब माल गया
बारह महीने जमा किए थे
जेब काट के साल गया

- गुलज़ार

जान्हवी राठौर,
चौथी, आनन्द विहार स्कूल,
भोपाल. म.प्र.

दिव्यांशी सिंह, पाँचवीं, आनन्द विहार स्कूल, भोपाल, म.प्र.

तनू, आठवीं, कर्तव्य, आगरा

शिवानी राकेश, आठवीं, डी.पी.एस, पटना

आधे पौने पूरे चाँद
जो भी था सब माल गया
बारह महीने जमा किए थे
जेब काट के साल गया

- गुलज़ार

सत्यम सिकरवार, नौवीं, कमला नेहरू स्कूल, भोपाल म.प्र

दुलारी नेताम, छठी, इमली महुआ विद्यालय, कोण्डागाँव, छत्तीसगढ़

चुनिन्दा ग्यारह चित्र

प्रिशकिला, पाँचवीं, डीएवी स्कूल, गुड़गाँव

रिया यादव, दसवीं, आनन्द विहार स्कूल, भोपाल, म.प्र.

किायारा, पाँचवी, शिक्षान्तर, दिल्ली

अदिति साही, सातवीं, डी.सी माडल सीनियर सेकेण्डरी स्कूल, पंचकुला, हरियाणा

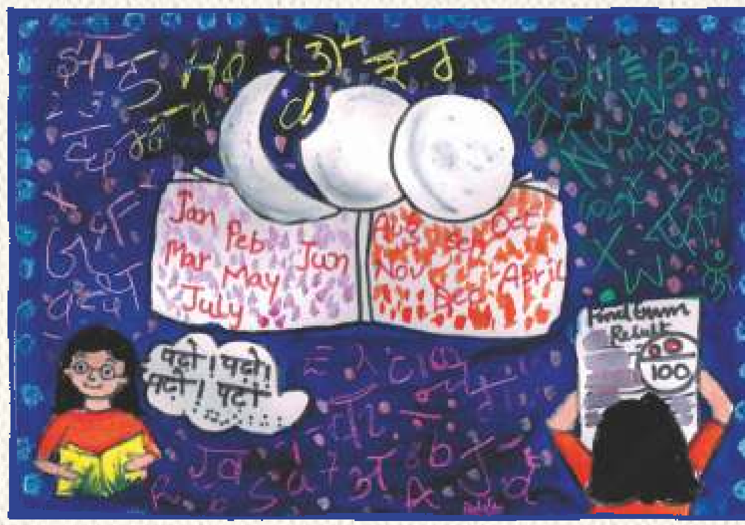

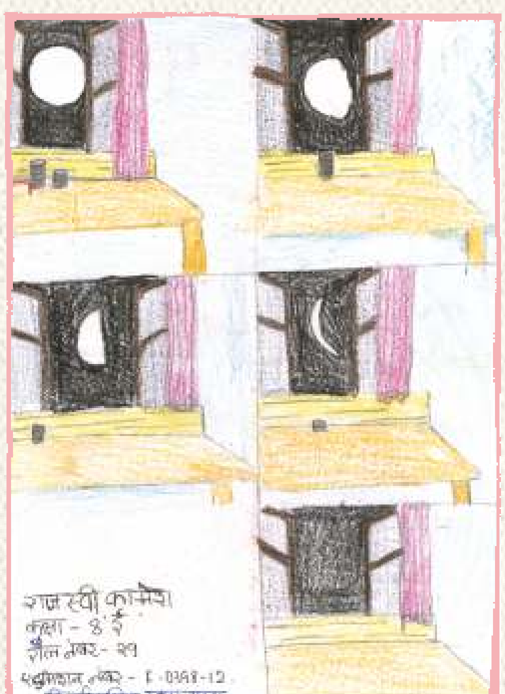

राजस्वी कामेश,
आठवीं, डी.पी.एस, पटना

कशिश दिवेदी, चौथी, आनन्द विहार स्कूल, भोपाल. म.प्र.

एक आसमान, चार सूरज

संगीता कुमारी, पटना
चकमक जुलाई 2014, में प्रकाशित

इस पेंटिंग को देखो – कितनी सुन्दर है ये। एक ही समय में आसमान में इतने सारे सूरज कैसे हो सकते हैं? एक ही फ्रेम में संगीता ने समय के बीतने को किस खूबसूरती से चित्रित किया है।

सुबह पूर्वी आकाश से उगने और शाम के पश्चिमी आकाश में डूबने तक सूरज दिनभर आकाश में घूमता-सा दिखता है। इस यात्रा में वो एक-सा नहीं रहता – उसकी चमक, गर्माहट लगातार बदलती रहती है। इस चित्र में सूरज की यही यात्रा बेहद खूबसूरती से दिखाई गई है – एक ही फ्रेम में सूरज के विभिन्न पड़ाव। शायद कलाकार खिड़की पर बैठा सुन्दर पहाड़ों और आसमान में बादलों को निहार रहा है। क्या खूबसूरत नज़ारा है! आकाश में सूरज पूर्व से पश्चिम की अपनी यात्रा पर निकला है। प्रकृति की सुन्दरता ने कलाकार को इस तरह बाँध लिया है कि उसे समय बीतने का एहसास तक नहीं होता... सुबह जो पहाड़ों के पीछे से झाँकता लाल सूरज था अपनी यात्रा पूरी कर शाम को फिर पहाड़ों के पीछे डूब गया है।

इस चित्र का कम्पोज़ीशन बेहद सरल और बेबाक है। उगता सूरज यानी शुरुआत पेज की बाईं ओर है और अन्त यानी सूरज का डूबना दाईं ओर। हालाँकि यह स्थिर छविवाला (यह वीडियो तो है नहीं जिसमें एक्शन और गति को देखा जा सके) एक ही फ्रेम है, पर हमारी आँखें पेंटिंग में हो रही गतिविधियों का जैसे पीछा करती चलती हैं।

रंगों का चुनाव भी यहाँ सूझबूझ से किया लगता है। यहाँ इस्तेमाल किए रंग कॉम्पलीमेंटरी रंग हैं। यानी रंग चक्र में एक-दूसरे के विपरीत रंग। जैसे पीला-बैंगनी, लाल-हरा)। यहाँ नारंगी और नीला रंग पेंटिंग को बेहद आकर्षक बना रहे हैं। अन्य रंगों की गैर-मौजूदगी देखनेवालों को मुख्य विषय (सब्जेक्ट) पर ध्यान केन्द्रित करने का मौका देती है। कोई ऐसे तत्व नहीं हैं जो आपको इधर-उधर भटका दें। चित्र की तफसीलों को देखो। हर अगली बार का सूरज पहली बार के सूरज से अलग लगता है। यह कलाकार की उस सूक्ष्म-दृष्टि की ओर इशारा है जिससे उसने अपने सब्जेक्ट में बारीक बदलाव किए हैं।

यह पेंटिंग मुझे भारतीय लघुचित्र (मिनिएचर) की याद दिलाती है जिसमें कई कृष्ण हैं। और सभी कई-कई गोपियों के साथ रास-लीला रचा रहे हैं। यह एक फ्रेम में समय को थाम लेने जैसा है।

- तरुणदीप गिरधर

तरुण ग्राफिक डिज़ाइनर हैं और पिछले 18 सालों से अहमदाबाद के राष्ट्रीय डिज़ाइन संस्थान (NID) में इलस्ट्रेशन और टोपोग्राफी पढ़ा रहे हैं।

एक था हाजी एक था नाजी

स्वयंप्रकाश

नाजी ने हाजी को फोन किया, "पहुँच गए मुम्बई?"

"हाँ।" हाजी ने बताया।

"कौन-से होटल में ठहरे हो?"

"होटल एलीफेंट।"

"कैसा है होटल?"

"होटल तो अच्छा है लेकिन आज मैं इसे छोड़ दूँगा।"

"क्यों?"

"बड़ी अजीब बात है यार। यहाँ लिखा है डिनर शाम छह से दस। मैं शाम छह बजे से खा रहा हूँ। इतना खा चुका हूँ कि अब एक इलायची भी और नहीं खा सकता, और देखो, अभी सिर्फ साढ़े आठ बजे हैं। अब बताओ दस बजे तक कैसे खाता रहूँ! ये तो ज़्यादती है यार!"

हाजी ने नाजी से कहा, "मुझे पातालकोट गाँव जाना है, और वो भी खुली जीप से। रास्ते में घना जंगल पड़ता है। सोच रहा हूँ कि जंगल में अगर शेर मिल गया तो मैं क्या करूँगा?"

"नहीं मिलेगा।" नाजी ने कहा।

"लेकिन मान लो जंगल में शेर मिल ही गया तो मुझे क्या करना चाहिए?"

"सिम्पल। तुम ऐसा करना दाहिनी तरफ का इंडिकेटर देना, और बाईं तरफ मुड़ जाना !"

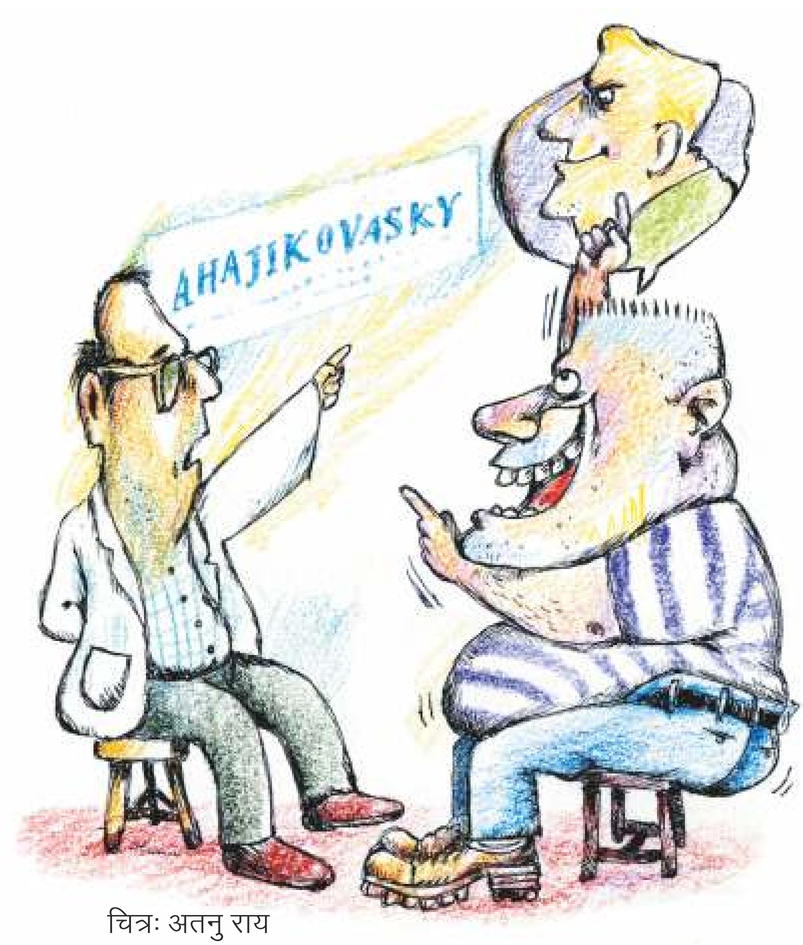

चित्रः अतनु राय

अलेक्सी नाज़िकोवस्की छुट्टियाँ बिताने के लिए रूस से भारत आए। यहाँ पहुँचकर उन्हें लगा कि दूर की चीज़ें कुछ धुँधली नज़र आ रही हैं। हालाँकि ऐसा यहाँ की धूल और धूप के कारण था। फिर भी उन्होंने सोचा कि एक बार आँखों की जाँच भी करवा लेना ठीक रहेगा। तो वे आँखों के डॉक्टर के पास पहुँच गए और बोले, "मुझे दूर की चीज़ें देखने में कुछ दिक्कत हो रही है। कृपया मेरी आँखों की जाँच कर लीजिए।"

आँखों के डॉक्टर ने अलेक्सी नाज़िकोवस्की को बैठने को कहा और दस फीट दूर दीवार पर लगी बत्ती जलाई। दीवार पर कुछ शब्दों की एक पंक्ति उभर आई -

A H A J I K O V A S K Y

"क्या आप इसे पढ़ सकते हैं?" आँख के डॉक्टर ने पूछा।

"पढ़ सकते हैं का क्या मतलब है?" मरीज़ बोला, "ये तो मेरे चचेरे भाई का नाम है!"

चित्रः दुर्गा बाई

प्रस्तुति - शम्पा शाह

एक लोककथा

ये समझो कि दुनिया लगभग पूरी की पूरी बन चुकी थी। चाँद-सूरज, नदियाँ-पहाड़, पेड़-पौधे, और हाँ, हमारी नानी की नानी की नानी भी जन्म ले चुकी थीं। सब की गुज़र-बसर के लिए अन्न दाई भी कोदो, कुटकी, धान, मूँग-मसूर और न जाने क्या-क्या बनकर धरती के भीतर से पैदा हो चुकी थीं। सात भाई गोंडों के बीच काम का बँटवारा भी हो चुका था: एक को खेती का काम मिला, तो दूसरे को औज़ार बनाने का और तीसरे को मिट्टी के बर्तन बनाने का काम मिला। सबसे छोटे भाई — परधान को मिला, बड़ा देव को जगाने यानी, उन्हें प्रसन्न करने का काम। लेकिन बड़ा देव को खुश कैसे किया जाए, यह किसी को नहीं पता था।

तभी एक रात सबसे बड़े भाई गोंड राजा को सपने में बड़ा देव दिखे। उन्होंने सपने में गोंड राजा को एक बाजा बनाने का उपाय बताया। साजा पेड़, जिसमें बड़ा देव खुद निवास करते हैं, उसकी लकड़ी से ही यह बाजा बनाया जा सकेगा। इसके अलावा बाँस, घोड़े की पूँछ के बाल और सुरतेली की डँगाल की भी ज़रूरत होगी।

सुबह उठने पर राजा को समझ में आ गया कि हो न हो, बड़ा देव इस बाजे को सुनकर ही प्रसन्न होंगे। गोंड राजा ने छोटे भाई परधान को बुलाकर उसे सपने की एक-एक बात बता दी और बाजा तैयार करने को कहा। छोटा भाई बिना एक भी पल गँवाए सीधे नदी के किनारे लगे साजा के पेड़ के पास पहुँचा। पेड़ को प्रणाम कर डाल काटने की आज्ञा ली और काम में जुट गया। इसके बाद सुरतेली की पतली-सी टहनी काटी और उसे धनुष की तरह घुमाकर डोरी से बाँध दिया। साजा की डँगाल को सुखाया, उसे सही आकार देकर भीतर से खोखला किया और तब उसमें बाँस का हत्था जोड़ा। तब परधान गया चौधरी के घर। उससे गाय की खाल लेकर आया। फिर उसने बगरी धान को पीसकर उससे लेई बनाई। इस लेई की मदद से उसने साजा डाल से तैयार किए गए बाजे के ढाँचे पर खाल मढ़ दी। घोड़े के बालों को बटकर उसने बनाए तीन तार और बाजे पर चढ़ा दिए। तार को थामने के लिए सुरतेली के तीन बिर्रा यानी चाबी और छोटी-सी घोड़ी बनाई। अब बाजा लगभग तैयार था; घोड़ी जो चढ़ चुके थे तार! कमी थी तो हथोरी की जो तारों में गूँज पैदा कर सके। धनुष का आकार ले चुकी सुरतेली की टहनी पर उसने घोड़े के पूँछ के तार और चौ-मुहे घुँघरू बाँधे। छोटा भाई परधान बहुत खुश था। काँधे पर बाजे को लटकाए वह भागा-भागा बड़े भाई गोंड राजा के पास पहुँचा कि लो, बाजा बन गया। अब जल्दी से इसे बजाने का तरीका बताओ!

मगर गोंड राजा तो ऐसे चुप थे जैसे उन्हें बोलना ही न आता हो, क्योंकि उनका सपना तो बस यहीं तक था। सपने में बाजा बनाने की विधि बताकर अचानक बड़ा देव साजा के पेड़ में लोप हो गए थे। अब उन्हें साजा के पेड़ की गुफा से फिर जगाकर बाहर लाने का काम तो छोटे भाई परधान को ही करना था।

छोटा भाई साजा के पेड़ की गोद में बाजा धरे, कई दिनों तक जैसे धूनी रमाए बैठा रहा। आँखें मूँदे वह बैठा था कि अचानक आसमान की गहराई से आता बड़ा सुरीला गान उसके कानों में पड़ा। आँखें खोलीं तो देखा कि नीले, कोरे आसमान पर भरही चिड़िया लहराती हुई गा रही थी। हवा में डोलती, कभी ऊँची, कभी नीची लहर-सी बनाती वह गाती रही...गाती रही...।

(शेष भाग पेज 42 पर)

कोहनी का पाठ

अनुपम मिश्र

क्या बिना पढ़े,
बिना स्कूल गए
कोई इंजीनियर बन
सकता है?

इस चित्र को तो ज़रा देखो ध्यान से। कुछ भी पीछे नहीं छूटा। ज़्यादा कुछ है भी नहीं इसके पास। पर यह इंजीनियर बन रहा है। आज नहीं तो कल यह पूरा इंजीनियर बन जाएगा।

बहुत-से लोग बताएँगे कि इसकी उमर तो अभी स्कूल जाने लायक है। पर कई जगह स्कूल ही नहीं हैं। कहीं स्कूल है पर छत नहीं है, दीवार नहीं है।

वापस अपने इंजीनियर पर लौटें। यह अपने माँ-पिता के साथ इसी उमर से तालाब बनाने के काम में जुट गया है। अभी यह तालाब सूखा दिख रहा है। एक आड़ी-तिरछी पाल पर खड़ा हमारा यह इंजीनियर हमें क्या बता रहा है। वह हमें अपने बाएँ हाथ की कोहनी दिखा रहा है। क्यों? मैंने उससे पूछा था कि तुम्हारे माँ-पिता ने यह पाल सीधी क्यों नहीं बनाई है? माँ-पिता तब वहाँ थे नहीं। इसने उनकी तरफ से नहीं, अपनी तरफ से पूरे भरोसे के साथ उत्तर दिया था, "अरे! आपको पता होना चाहिए कि पाल के दाहिनी तरफ एक बड़ा नाला है। वह सामनेवाली पहाड़ी से उतरता है। अभी सूखा दिखता है पर बरसात में यह नाला इतना बौखला जाता है कि पूछो मत। वह पानी लेकर हमारे इस तालाब में आएगा। अगर यह पाल हमने सीधी बना दी होती तो वह इसे तोड़कर अपने साथ ले जाता। इसलिए नाले के पानी की ताकत को तोड़ने के लिए हमारे पिताजी ने पाल में कोहनी दी है।"

भरने के बाद मैं इस तालाब पर दुबारा तो नहीं जा पाया पर वहाँ से खबर लगती रही। हर साल वह तालाब पूरा भरता रहा। कभी टूटा नहीं। यानी हमारे छोटे इंजीनियर की कोहनी काम आती रही है।

अँग्रेज़ जब यहाँ आए थे तब हमारे यहाँ सिविल इंजीनियरिंग की पढ़ाई सिखानेवाला कोई भी कॉलेज नहीं था। (दूसरे तरह के विषय सिखानेवाले कॉलेज भी नहीं थे।) लेकिन इंजीनियरिंग का काम सब जगह होता था। पहला ऐसा कॉलेज हरिद्वार के पास रुड़की नाम के एक छोटे-से गाँव में खुला था। सन् 1847 में। वह भी इसलिए कि इस गाँव के लोगों ने तब ईस्ट इंडिया कम्पनी के लिए अकाल से निपटने के लिए कोई 200 किलोमीटर लम्बी एक शानदार नहर बनाई थी। उस ज़माने में कहीं भी बिजली नहीं थी। इसलिए चूना पत्थर को बारीक पीसकर बनाई जानेवाली सीमेंट भी नहीं थी। यह नहर बहुत लम्बी-चौड़ी तो थी ही, इसे एक बड़ी नदी को भी पार कराना था। तब अँग्रेज़ अधिकारियों को लगा था कि बस इसी बात पर नहर बनाने का काम ठप्प हो जाएगा। पर रुड़की के गाँववालों ने, अनपढ़ माने गए इंजीनियरों ने इसे न सिर्फ पूरा कर दिखाया, बल्कि ऐसा किया कि आज कोई 200 साल बाद भी सोनाली नदी के ऊपर से निकली यह नहर टूटकर गिरी नहीं है। आज भी यह ठाठ से बहती है और अनगिनत खेतों की सिंचाई करती है।

इस नहर को जिन अनेक गुमनाम और अनपढ़ माने गए लोगों ने बनाया था, उन्हीं के कारण फिर हमारे देश का पहला इंजीनियरिंग कॉलेज सन् 1847 में इसी छोटे-से गाँव रुड़की में खोला गया था। तब यह हमारे देश का ही नहीं, एशिया का भी पहला ऐसा कॉलेज था। अफ्रीका में भी कोई ऐसा कॉलेज नहीं था। चीन, जापान आज के कोरिया आदि देशों में भी नहीं। खुद इंग्लैंड में इस दर्जे का कोई कॉलेज नहीं था। इस बीच एक बार तो इंग्लैंड से भी छात्रों का एक दल रुड़की के इस कॉलेज में पढ़ने आया था।

तो कोहनी का यह पाठ हमें क्या बताता है? चक मक

एक किनारे की नदी - इच्छामति

स्निग्धा दास

दुर्गा पूजा की आहट पारिजात (शिउली) में कलियाँ लगने से ही मिल जाती है। इस समय बंगाल-बांग्लादेश में दुर्गा के पण्डाल ज़ोर-शोर से बन रहे होते हैं। पूजा के समय पत्रिकाओं के विशेष अंक छपने के लिए तैयार हो रहे होते हैं। इनमें से ज़्यादातरों के मुखपृष्ठ पर तीन बड़ी-बड़ी आँखोंवाली दुर्गा होती है तो कुछ में नदी में नावों में सवार माँ की मूर्ति होती है। हम जैसे बंगाल से बहुत दूर जा बसे लोगों को ये पत्रिकाएँ जैसे उसी माहौल में ले जाती हैं। और दूर-दराज राजस्थान की एक छोटी-सी जगह में बैठी मैं याद करने लगती हूँ – संगी-साथियों, परिवारवालों, अपरिचितों के साथ मनाई गई जाने कितनी पूजाएँ। वो उमंग। वो तैयारियाँ। वो खास व्यंजन। एक किताब के पन्नों के साथ जाने कितने पन्ने खुलते जाते हैं...

याद आया कि दुर्गा पूजा के बाद अखबारों के पहले पन्ने पर एक तस्वीर हर साल छपती थी – बंगाल और बांग्लादेश के बीच बहती इच्छामति की। जिसका एक किनारा भारत है और एक बांग्लादेश। साल में एक दिन – विजया दशमी के अवसर पर – यह नदी अपने दोनों किनारों को बीच में आकर मिलता देखती है। इच्छामति के एकदम बीच से गुज़रनेवाली भारत-बांग्लादेश की सीमारेखा के चार किलोमीटर के हिस्से पर इस दिन मेला लगता। बीच में भी और दोनों किनारों पर भी। भारत में उत्तर चौबीस परगना ज़िले के टाकी और हास्नाबाद घाट से और बांग्लादेश में सातखिरा के श्रीपुर घाट से दोपहर से ही दुर्गा विसर्जन के लिए नावें चलने लगतीं। शाम के लगभग छह बजे तक यहाँ जश्न का माहौल बना रहता। हर ओर उन्माद हर्ष उल्लास होता। एक तरफ की नावों में भारत का झण्डा होता, दूसरी तरफ की नावों में बांग्लादेश का। दोनों किनारों पर लोगों का हुजूम होता। नाव पर दुर्गा की मूर्ति लिए लोग भरे होते। दोनों देशों के झण्डे लहरा रहे होते। रंगारंग कार्यक्रम होते। ढोल-बाजे बजते। नदी के बीच में जब एक देश की नाव दूसरे देश की नाव से मिलती तो फूल, फल और मिठाइयाँ बाँटी जातीं।

इच्छामति यह सब देख रही होती। उस दिन पता नहीं वो और दिनों से ज़्यादा खुश होती थी या ज़्यादा उदास! वो अपने किस पानी को भारत का और किस को बांग्लादेश का माने! काश, इच्छामति इस सरहद को कहीं दूर बहा ले जाती।

पर समय के साथ हदें बही नहीं। मज़बूत होती गईं। अलबत्ता इच्छामति बहती रही। एक ओर बंगाल के नदिया, उत्तर चौबीस परगना जैसे ज़िले और दूसरी ओर बांग्लादेश के जशोर, सातखिरा और खुलना ज़िले के गाँव, नगर, शहर को बसाते-उजाड़ते बहती रही। और फिर जब वो दो पहचानों का बोझ न उठा पाई तो बंगाल की खाड़ी में मिलकर बंगाल की खाड़ी बन गई।

चित्रः इन्टरनेट

भूपेन हजारिका का एक गाना याद आ रहा है –

शागोर शोन्गोने,
धोंगशेर आधाते दिए जाई पोतिधात
दृष्टिर शेनानी ओनोन्तो
शेई शोंधात आने मोर
पोशान्तो शागोरे
प्रोगोतीर नोतून दिगौन्तो
ताइतो मोनेर मोर प्रोशान्तो शागोरेर
उर्निमालो शान्तो शागोर शान्गोमे

(यानी, सागर संगम में विद्वंश के साथ-साथ प्रगति की नए राह बनते जाना)

इच्छामति याद आई, आती ही गई। याद अगर बहुत दूर की और बहुत पहले की हो तो बहुत ज़ोर से आती है। और देर तक साथ बनी रहती है। इच्छामति के बारे में सोचने लगी तो मन में कई सवाल उठने लगे–

इच्छामति में ऐसा क्या खास है जबकि इस अंचल में लगभग 50 और छोटी-बड़ी सीमावर्ती नदियाँ हैं? क्यों फिर इसी नदी के दुर्गा विसर्जन की इतनी चर्चा होती है?

आज इच्छामति के दो किनारे दो अलग देश में हैं। जिन्हें अब सरकारें मिलने नहीं देतीं। अब विजया दशमी के दिन नावें बीच नदी तक आकर लौट जाती हैं।

विभूतिभूषण बन्धोपाध्याय के उपन्यास में इच्छामति की उछलती-कूदती यात्रा, इसके आसपास का प्राकृतिक सौन्दर्य और जैव विविधता के साथ-साथ इसके किनारे बसे लोगों के सुख-दुख भी हैं। इस नदी के पासवाले इलाकों पर अँग्रेज़ी हुकूमत का दबाव और इसके चलते किसानों द्वारा की जानेवाली नील की खेती और उससे जुड़े आन्दोलन का विस्तृत ब्यौरा भी इसमें है।

विभूतिभूषण की इच्छामति के किनारे आसपास के गाँवों के लोग कभी यूँ ही समय बिताने बैठ जाते हैं, तो कभी नदी पार करके व्यापार पर निकल जाते हैं। कभी अपने दुख बाँटने नदी के पास आते हैं तो कभी इसके सौन्दर्य को अवाक निहारते रहते हैं। कभी एक गाँव छोड़ दूसरे गाँव में जा बसते हैं तो कभी अपने ही गाँव में साथ मिलकर त्यौहार मनाते हैं। कभी नवजात शिशु को लेकर इसके किनारे टहलते हैं और नदी के ठण्डी हवा और बहते पानी का आनन्द उठाते हैं तो कभी किसी का जनाज़ा लेकर तट पर पहुँच जाते हैं। इसमें कहीं अत्याचारी अँग्रेज़ शासकों की बात है तो कहीं लोगों की सेवा में लगे लोगों का ज़िक्र। नदी

ए पार ओ पार
कोन पार ए जानि ना
इस पार या उस पार
हमें नहीं मालूम।

किनारे की उपजाऊ ज़मीन पर कहीं धान के लहलहाते खेत और फल-सब्ज़ियों की बाड़ियाँ हैं तो कहीं विदेशी हुकूमत के दबाव में की जानेवाली नील की खेती। अन्याय और अत्याचार के विरोध में ज़ोरदार आवाज़ उठना है और फिर अँग्रेज़ को इसी नदी के रास्ते कलकत्ता के बन्दरगाह चले जाने पर मजबूर करना भी है। इन्हीं अँग्रेज़ों में से जिनका लगाव गाँव और गाँववालों से बढ़ा उन्हें इच्छामति के अंचल की संस्कृति के साथ जोड़ने, खास त्यौहारों में उनकी भागीदारी का भी इसमें ज़िक्र है।

किताब के एक अंश से हमें अँग्रेज़ी हुकूमत के बदलते दिन और कुछ अँग्रेज़ों की मानसिकता में बदलाव का आभास मिलता है।

इच्छामति ने जैसे मुझे बाँध लिया था। ज्यों ज्यों मैं इस किताब को पढ़ती गई मेरा इस से रिश्ता और गहरा होता गया।

रवीन्द्रनाथ ठाकुर की एक चिट्ठी में इच्छामति का ज़िक्र कुछ इस तरह आता है –

"बारिशों का मौसम है। और मैं नाव पर इस छोटी-सी नदी इच्छामति से गुज़र रहा हूँ। इसके दोनों तटों पर गाँवों की कतारें हैं। गन्ना, बेंत, पटसन के पौधे हर जगह हैं। लगता है जैसे किसी कविता का छन्द बार-बार दोहराया जा रहा है। और उसका मज़ा भी लिया जा सकता है। पद्मा जैसी बड़ी नदी का छन्द याद करना मुश्किल है मगर इस छोटी-सी नदी की बलखाती चाल जो बारिश के पानी से घटती-बढ़ती है, एक न भूलनेवाले छन्द जैसा है। मैं इससे प्रभावित होकर अपना छन्द बना रहा हूँ। शाम का समय है। काले बादल घिर आए हैं। बिजली कड़क रही है और तट पर विलायती सरयू (या झाऊ) के पेड़ तूफानी हवा के झोंकों से झुके हुए हैं। वहीं बाँस का वन घना काला दिखाई दे रहा है।"

(टैगोर की चिट्ठियाँः पाबना के रास्ते - जुलाई 9, 1895 से साभार)

उस समय से आज वक्त काफी बदल चुका है। आज इच्छामति के दो किनारे दो अलग देश में हैं। जिन्हें अब सरकारें मिलने नहीं देतीं। 2012 तक विजया दशमी के दिन दोनों देश की नावें सीमा पारकर एक-दूसरे के घाट तक चली आती थीं। पर पिछले साल से इस पर रोक लग गई है। अब नावें बीच तक आकर लौट जाती हैं। और बीच में यह मिलना भी दोनों देशों की सीमा सुरक्षा बल की मौजूदगी में ही होता है।

मैं सोचती हूँ कि बीच से लौट गई नावें भले ही सीमा पार न कर पाएँ पर जो हर्ष, उल्लास और मैत्रीभाव उस वक्त सीमा लाँघकर लोगों के दिलों में समा जाता है उसे कौन रोक सकता है! और इच्छामति मूक दृष्टा बनी मैत्री के इस अनूठे जश्न को देखती रहती है।

भूपेन हजारिका का एक गाना यहाँ याद करना लाज़मी होगा – भले ही वह इच्छामति पर न हो।

ए पार ओ पार कोन पार ए जानि ना
ओ आमी शोब खाने ते आछी
गंगार जोले भाषिए डिंगा
उ आमी पद्ना ते होई माझी।

(इस पार या उस पार हमें नहीं मालूम। मैं तो माझी हूँ। गंगा में नाव बहाता हूँ तो पदमा में निकलता हूँ माझी बनकर)।

पेड़ ने छींका

एक बच्चा स्कूल से घर जा रहा था।
उसे ज़ोर-से छींक आई।

लोकेश कुमार साहू (आठवीं),
नेन्सी राजपूत, रिंकी साहू (दोनों सातवीं)।
ईश्वर नगर, भोपाल।

जब पेड़ को पता चला कि
मुझे एक छींक ने हिला दिया तो
उसने सोचा कि अब मैं भी छीकूँगा।

पेड़ ने छींका
तब उसके सारे पत्ते झड़ गए।

पत्तों की बात - 2

आमोद कारखानिस

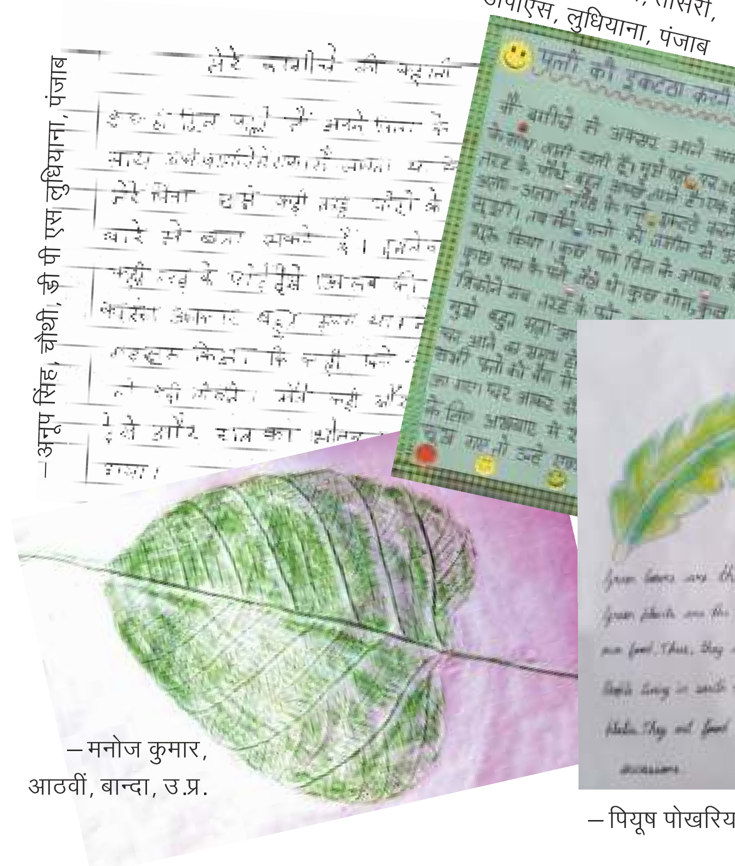

– श्रेया सिंघला, तीसरी, डीपीएस, लुधियाना, पंजाब

– अनूप सिंह, चौथी, डी पी एस लुधियाना, पंजाब

– मनोज कुमार, आठवीं, बान्दा, उ.प्र.

– पियूष पोखरिया

चकमक के अक्टूबर अंक में तुम्हारे आसपास की पत्तियों के अवलोकन की बात की थी। हमें खुशी है कि तुमने बहुत मन से इसे किया। उम्मीद है तुम्हारा पत्तियों से रिश्ता अब और गहरा हो गया होगा!

तुम्हारे ढेर सारे पत्रों में से कुछ चुनिन्दा अंश भी यहाँ पेश हैं...

1.

यह गतिविधि मेरे लिए नया अनुभव थी। मैंने पत्ती के बारे में इस तरह से कभी सोचा ही नहीं था। मैंने एक पीपल की पत्ती लिया और उसका चित्र उभारने के लिए पत्ती को उलटा रखा और उसके ऊपर कागज़ रखकर पेंसिल को घिसा। मैंने देखा कि पत्ती उभर रही है। जब पूरी पत्ती उभर आई तो मैं यह देखकर दंग था कि इस पत्ती के अन्दर एक जाल-सा बना हुआ है। हमें पढ़ाया तो गया था लेकिन आज मैंने खुद कर के सीखा और समझा। यह बहुत मज़ेदार था।

– मनोज कुमार

2.

मैंने महुआ की पत्ती को लेकर मोम के रंग से कागज़ पर पत्ती को उभारने की कोशिश किया लेकिन मुझसे नहीं बना। मैं थोड़ा निराश हो रहा था। मैंने दूसरे साथी के पास जाकर देखा तो मुझे अपनी गलती समझ में आई। फिर मैंने भी पत्ती को उलटा रखा और मोम के रंग से कागज़ पर घिसा। इससे पत्ती की छोटी-छोटी नसें दिखाई देने लगीं। मैं दौड़ा-दौड़ा गुरूजी के पास गया और अपनी उभरी पत्ती को दिखाकर बहुत खुशी महसूस कर रहा था। इसी तरह अगर रोज़ पढ़ाई हो तो बहुत मज़ा आए।

– संदीप कुमार

3.

हम दो लोग मिलकर बोगनबेलिया की पत्ती को कागज़ पर बना रहे थे लेकिन वो नहीं बन रही थी। हमें लगा कि यह पतली और मुलायम है। फिर हम महुआ की मोटी पत्ती लिया। तीन-चार बार बनाया नहीं बना तो गुस्सा आया। फिर सोचा एक बार और बनाएँ तो काफी ठीक बन गई। हमने अब से समझा है कि मोटी और पुरानी पत्ती से जादा अच्छा चित्र बनता है। नई और मुलायम पत्ती से अच्छा नहीं बनता है।

– भारती और पुष्पा

(ये सभी बच्चे कक्षा आठ, पूर्व माध्यमिक विद्यालय, बरेहण्डा, अतर्रा (बाँदा) के हैं।)

– अर्पित चहल, चौथी, डी पी एस लुधियाना, पंजाब

– मुस्कान चौहान, तीसरी, पुणे

...ल, तीसरी, शिलॉन्ग

– रोशनी कुन्दु, आठवीं, एसओसएस, बालग्राम, भोपाल

पत्तियों पर गौर करते समय तुमने ध्यान दिया होगा कि अलग-अलग प्रजातियों के पत्ते कितने अलग-अलग तरह के होते हैं! पर क्या एक ही पेड़ या पौधे के पत्ते भी एक जैसे होते हैं? भले ही उनका आकार एक-सा हो पर वे बिलकुल एक-से नहीं होते। किसी पास के पेड़ को देखो कि क्या वाकई ऐसा होता है?

पत्तियों में कुछ समानताएँ भी होती हैं। और इनसे उनका वर्गीकरण (classification) किया जा सकता है। जैसे पत्तियों को दो वर्गों में बाँट सकते हैं – धारियाँ तो दोनों में होती हैं पर एक में वे एक-दूसरे को काटती नहीं (समान्तर होती हैं) जबकि दूसरे में वे एक जाली-सी बना लेती हैं। पत्तियों पर धारियों की बनावट के आधार पर पेड़-पौधों को दो भागों में बाँटा जाता है – एकदलीय व द्विदलीय। अब देखना यह है कि एकदलीय व द्विदलीय वनस्पतियों में पत्ती की धारियों की रचना के अलावा क्या और भी अन्तर हैं? इन दोनों तरह की वनस्पतियों की विशेषताएँ पहचानने के लिए हमें कई सारे एकदलीय और द्विदलीय पौधे ढूँढने होंगे। इसमें समय लगेगा और यह काम बाद में कभी फुरसत में किया जा सकता है।

यहाँ मूल मुद्दा है विविधता का?

अगले पन्ने पर जारी

इस बार की गतिविधि

तुम्हें अपनी पसन्द की दस ऐसी चीज़ें चुननी हैं जिन्हें आमतौर पर तुम दुकान से खरीदते हो। जैसे – चॉकलेट, साबुन, बिस्किट, पेंसिल...।

एक कागज़ में इन चीज़ों के पैकिटों पर लिखी कुछ जानकारियों को दर्ज कर लो। जैसे –

– ये चीज़ें कहाँ-कहाँ तैयार (Manufacture) हुई हैं?

– क्या इनमें से कोई तुम्हारे शहर या गाँव या कस्बे में तैयार होती है?

– ये दसों चीज़ें किन-किन वस्तुओं से मिलकर बनी हैं?

अब अपनी सूची की एक-एक चीज़ लो और पता करो कि वह जिन-जिन चीज़ों से मिलकर बनी है वे कहाँ-कहाँ मिलती हैं। जैसे किसी चॉकलेट की फैक्ट्री मुम्बई में है पर उसमें डलनेवाला कोको शायद केरल से आता होगा। ये सारी जानकारियाँ जुटाकर एक तालिका बन जाएगी।

इस तालिका पर गौर करो। तुम्हारी पसन्द की एक-एक चीज़ तुम तक कहाँ-कहाँ से पहुँची है। इस तालिका को देखकर तुम्हारे सामने क्या-क्या बातें आती हैं? मसलन, एक ही चीज़ के बनने में लगनेवाली वस्तुओं की ढुलाई के लिए कितना डीज़ल खप गया होगा?

हमें तुम्हारे जवाबों का इन्तज़ार रहेगा। चुनिन्दा चिट्ठियाँ हम चकमक के अगले अंक में पेश करेंगे। और इस विषय पर और बातचीत भी करेंगे।

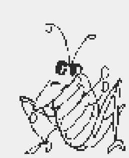

क्यों हैं ये पत्तियाँ
एक-दूसरे से अलग?

– श्रेया सिंघला, तीसरी, डीपीएस, लुधियाना, पंजाब

पिछले पन्ने से जारी

कुछ पेड़ों के पत्ते बड़े-बड़े होते हैं। तो कुछ के छोटे-छोटे। पत्तियों का काम प्रकाश संश्लेषण (photosynthesis) है। बड़ी पत्ती के पास प्रकाश के लिए ज़्यादा जगह है। तो क्या पेड़ का काम कम पत्तियों से भी चल जाएगा? तो फिर हर पौधे के पत्ते बड़े-बड़े क्यों नहीं होते?

असल में, प्रकृति में कोई भी चीज़ मुफ्त नहीं होती। पत्ती बड़ी होने से प्रकाश संश्लेषण में तो फायदा होता होगा पर पत्ती जितनी बड़ी होगी उतनी ही वह भारी होती जाएगी। और भारी पत्ती का मतलब है उसके भार को सहने की क्षमता रखनेवाली नीचे की धारियों तथा डण्ठल का बहुत मज़बूत होना। कमल के फूल की पत्ती बहुत बड़ी तो होती नहीं फिर भी किसी तालाब में खिले कमल की पत्ती को उलटकर देखो कितनी मोटी धारियाँ उसे थामे हुए हैं।

पत्ती जितनी बड़ी होगी हवा के सामने टिक पाना उतना मुश्किल होता होगा। उसके लिए और मज़बूत धारियों और डण्ठल की ज़रूरत होगी। और फिर भी ज़ोर की हवा चलने से पत्ती टूट सकती है।

दुनिया के सबसे बड़े पत्तों में कोई है जिसे हम जानते हैं?

हाँ, अपना जाना-पहचाना नारियल! नारियल के पेड़ ज़्यादातर समुद्र के किनारे उगते हैं। उन्हें समुद्र से बहनेवाली ज़ोर की हवा का सामना करना पड़ता है। नारियल की कतराई-सी पत्ती को हवा का सामना करना आसान होता होगा?

पत्तियों के सामने और भी मुसीबतें हो सकती हैं। पानी जो पेड़ के लिए जीवन है वह भी मुश्किलें पैदा कर सकता है। अगर पत्ती पानी में पूरी तरह से डूबी रही तो उसके छोटे-छोटे छिद्र (यानी स्टोमैटा) जिनसे गैसों का आदान-प्रदान होता है बन्द हो जाएँगे। हाँ, यह समस्या हाइड्रिला जैसे जलीय पौधों को नहीं होती जो पानी में ही होते हैं। ऐसा इसलिए कि वहाँ गैसों के आदान-प्रदान की व्यवस्था अलग होती है। बारिश की बूँद तेज़ गति से गिरती है। पत्तियों को यह मार भी सहनी पड़ती है। उत्तर की ओर के पेड़ के पत्तों को पानी की बजाय बर्फ का सामना करना पड़ता है। अगर पत्ती पर बर्फ जमा हो गई और साथ ही अन्दर का पानी भी बर्फ बन गया तो पत्ती मर जाएगी। क्या इसके लिए वहाँ की पत्तियों के आकार अलग विकसित होते नज़र आते हैं? इसके अलावा भी पत्तियों के दुश्मन हज़ार हैं – कई सारी कीट-इल्लियाँ पत्तियाँ खाती हैं। उनसे बचने की भी कोई तरकीब चाहिए।

यह सूची काफी बढ़ सकती है। ढूँढोगे तो इनके कई उदाहरण मिलेंगे।

दरजिन

विनोद पदरज

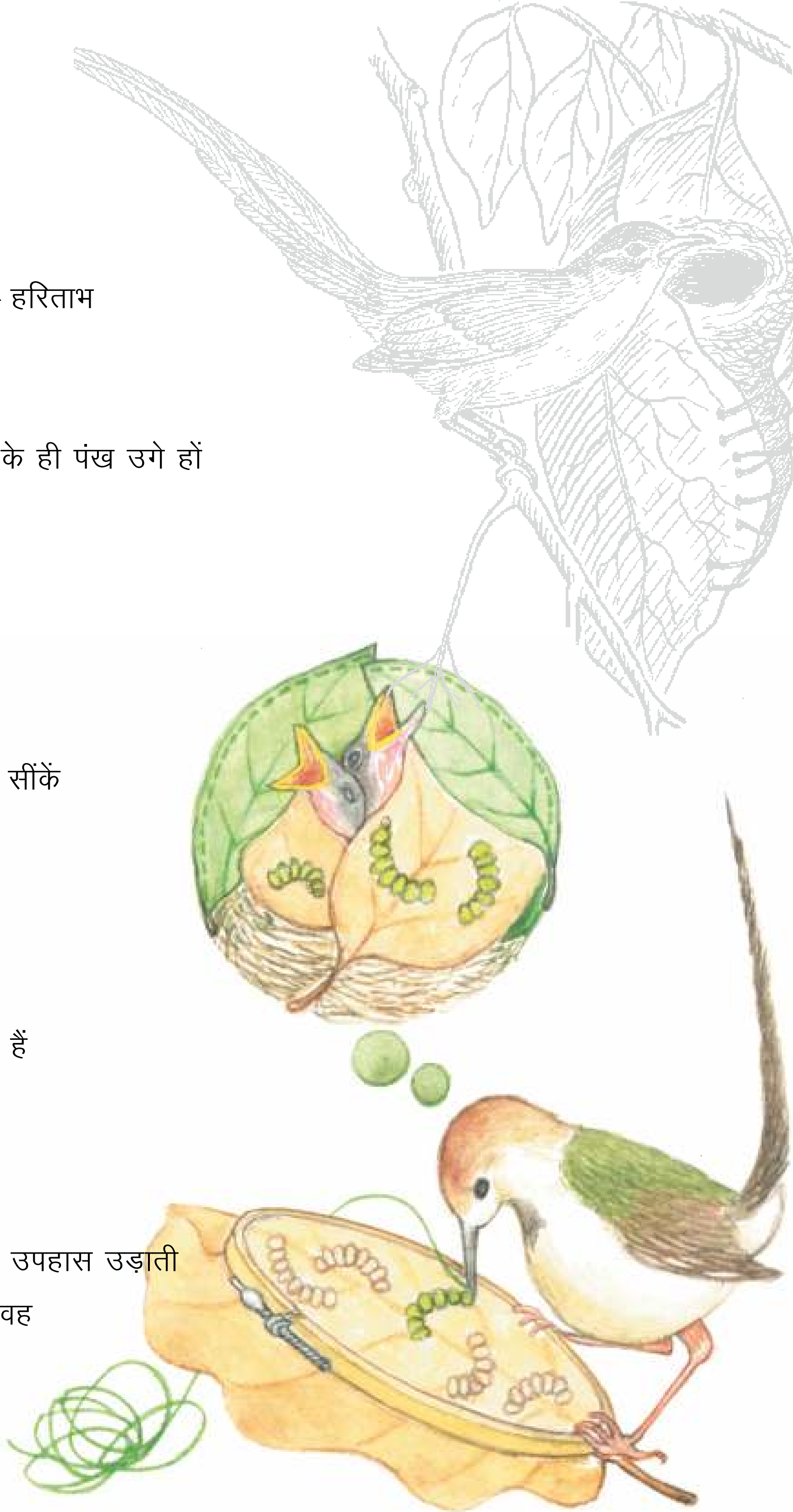

यह जो चिड़िया है – हरिताभ
गुलाबी पाँवोंवाली
इतनी नन्ही
मानो चिटली उँगली के ही पंख उगे हों

फुदक रही है
यहाँ से वहाँ
आकुल आतुर
ढूँढ रही है
रुई, कपड़ा, कागज़, सींकें
ट्विट-ट्विट गाती
हिया जुड़ाती

मुझको है मालूम
कि उसने खोज लिए हैं
जुड़वाँ गहनों जैसे
पत्ते दो अमरूद के
जिनको सीकर
अणु-परमाणु बमों का उपहास उड़ाती
अपना नीड़ बनाएगी वह
प्रजापति की बेटी

चित्रः दिलीप चिंचालकर

कलर कैमरे से 8449 की ऊँचाई से ली तस्वीर

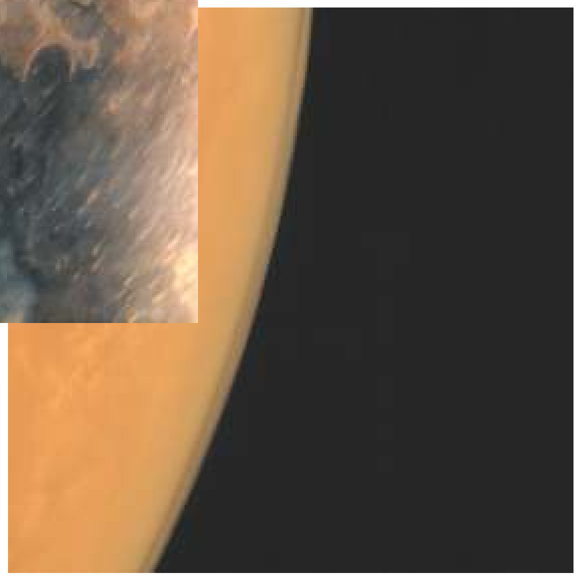

मंगलयान द्वारा 7300 किलोमीटर की ऊँचाई से ली तस्वीर

मंगल दी गल

विवेक सोले

मंगल सौरमण्डल में सूर्य से चौथा ग्रह है। पृथ्वी से यह लाल रंग का दिखता है इसलिए इसे "लाल ग्रह" भी कहते हैं। मंगल की कई बातें पृथ्वी से मिलती-जुलती हैं। पृथ्वी की ही तरह, मंगल भी एक स्थलीय धरातलवाला ग्रह है। यानी इस पर खड़ा हुआ जा सकता है। इसका वातावरण विरल है। दिन की लम्बाई 24 घण्टे है और एक साल लगभग 687 दिनों के बराबर। यानी भविष्य में अगर वहाँ बच्चों का स्कूल शुरू हुआ तो आने-जाने का समय तो पृथ्वी जैसा ही रहेगा लेकिन एक कक्षा से दूसरी में पहुँचने में पृथ्वी के दो वर्ष जितना समय लगेगा। इसकी धुरी भी पृथ्वी की तरह झुकी हुई है जिससे यहाँ भी पृथ्वी जैसे ही मौसमी चक्र होते हैं। वर्षों बाद जब मानव सभ्यता कहीं और बसने का सोचेगी तब मंगल ही हमारी मंज़िल होगी।

मंगलयान, भारत का पहला मंगल अभियान है। 5 नवम्बर 2013 को 2 बजकर 38 मिनट पर आँध्रप्रदेश के श्रीहरिकोटा स्थित सतीश धवन अन्तरिक्ष केन्द्र से ध्रुवीय उपग्रह प्रक्षेपण यान (PSLV) सी-25 के द्वारा सफलतापूर्वक छोड़ा गया। अब तक मंगल को जानने के लिए शुरू किए गए दो-तिहाई अभियान असफल रहे हैं। 24 सितम्बर 2014 को मंगल पर पहुँचने के साथ ही भारत विश्व का ऐसा पहला देश बन गया जिसका पहला ही मंगल अभियान सफल रहा। और तो और यह मंगल पर अब तक का भेजा सबसे सस्ता मिशन है। इस मिशन की लागत 450 करोड़ रुपए (करीब 6 करोड़ 90 लाख डॉलर) है – *ग्रेविटी* फिल्म के बजट से भी कम।

कुछ दिलचस्प बातें...

योजना के अनुसार मंगलयान को GSLV रॉकेट से छोड़ा जानेवाला था। GSLV शक्तिशाली रॉकेट है जिस पर बैठकर मंगलयान सीधे मंगल की तरफ जा सकता था। पर परीक्षण के दौरान कुछ समस्या आ जाने के बाद इसे कम शक्तिशाली PSLV से छोड़ा गया। अगर ऐसा नहीं करते तो लॉन्च विन्डो (बॉक्स देखें) का समय (28 अक्टूबर 2013 से 19 नवम्बर 2013) निकल जाता। और मिशन तीन साल पिछड़ जाता।

PSLV से छोड़ने का मतलब था यान को हलका रखने की कुछ जुगत करना। इसलिए मंगलयान को सीधे मंगल की तरफ न भेजते हुए इसे पहले पृथ्वी की पार्किंग कक्षा में छोड़ा गया। फिर रॉकेट की मदद से पाँच चरणों में इसे पृथ्वी की अधिकतम दूरीवाली कक्षा में पहुँचाया गया। इस तरीके को स्लिंग शॉट तकनीक कहा जाता है। यह वैसा ही है जैसे किसी पत्थर को धागे में बाँधकर गोल-गोल घुमाते हुए धागे की लम्बाई बढ़ाना। इससे पत्थर हमसे दूर होता जाएगा और उस दूरी पर चक्कर लगाएगा।

छठे चक्कर में एक अन्तिम धक्का देकर 1 दिसम्बर को मंगलयान ने मंगल का रुख किया। उस समय वह हमसे 536000 किलोमीटर दूर था। यह Trans Mars Injection (TMI) इस अभियान की एक महत्वपूर्ण कड़ी थी।

दिसम्बर के बाद 17 सितम्बर तक की यात्रा आरामदायक रही। केवल दिशा को ठीक रखने के लिए छुटपुट बदलाव करने पड़े।

परीक्षा की घड़ी तो 17 सितम्बर के बाद आनी थी। अन्तिम पल व्याकुलता भरे थे। मंगल के पास पहुँचने पर मंगलयान के पथ में कुछ महत्वपूर्ण परिवर्तन करने थे। मंगलयान तेज़ गति से मंगल की तरफ बढ़ रहा था। मंगल की कक्षा (ऑर्बिट) में आने के लिए उसकी गति को धीमा करके उसे मंगल की orbital velocity (किसी कक्षा में परिक्रमा करने की गति) के बराबर लाना पड़ा। ऐसा करने के लिए यान की उलटी दिशा में 300 दिनों से सोए हुए एक तरह के छोटे रॉकेट LAM (liquid Apogee Motor) को जगाकर 23 मिनट तक चलाए रखा। यान की गति अगर मंगल की escape velocity (किसी ग्रह या चाँद के गुरुत्वाकर्षण बल की पकड़ से बाहर होने के लिए किसी वस्तु को जो गति प्राप्त करनी होती है) से ज़्यादा होती तो वह मंगल की पकड़ से दूर निकल जाता और कम रह जाती तो वह मंगल की सतह से टकरा जाता। यह पूरी तरह इस पार या उस पार वाली स्थिति थी। तमाम कौशलों के बावजूद एक मामूली-सी भूल भी इसे गहराइयों में धकेल सकती थी।

(शेष भाग पेज 42 पर)

लॉन्च विन्डो

दूसरे ग्रह में जाया कैसे जाए यह तो हम जान चुके हैं पर सही दिशा की ओर कब बढ़ना है यह जानना भी बहुत ज़रूरी है। अगर सूर्य की कक्षा में सही समय पर उपग्रह नहीं छोड़ा गया तो उपग्रह उस ग्रह से भेंट नहीं कर पाएगा जहाँ पहुँचना उसका लक्ष्य है। और वो सूर्य की कक्षा में ही परिक्रमा करता रह जाएगा। इसीलिए ग्रहों के पथ और गति को ध्यान में रखते हुए उपग्रह को छोड़े जाने की समय अवधि यानी लॉन्च विन्डो बहुत ज़रूरी होती है। अगर किसी कारण यह समय चूक जाता है तो अगले विन्डो के लिए इन्तज़ार करना पड़ता है।

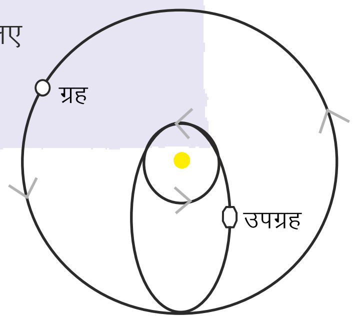

ग्रह-उपग्रह का मिलन

5 नवम्बर 2013 को मंगलयान का भेजा जाना

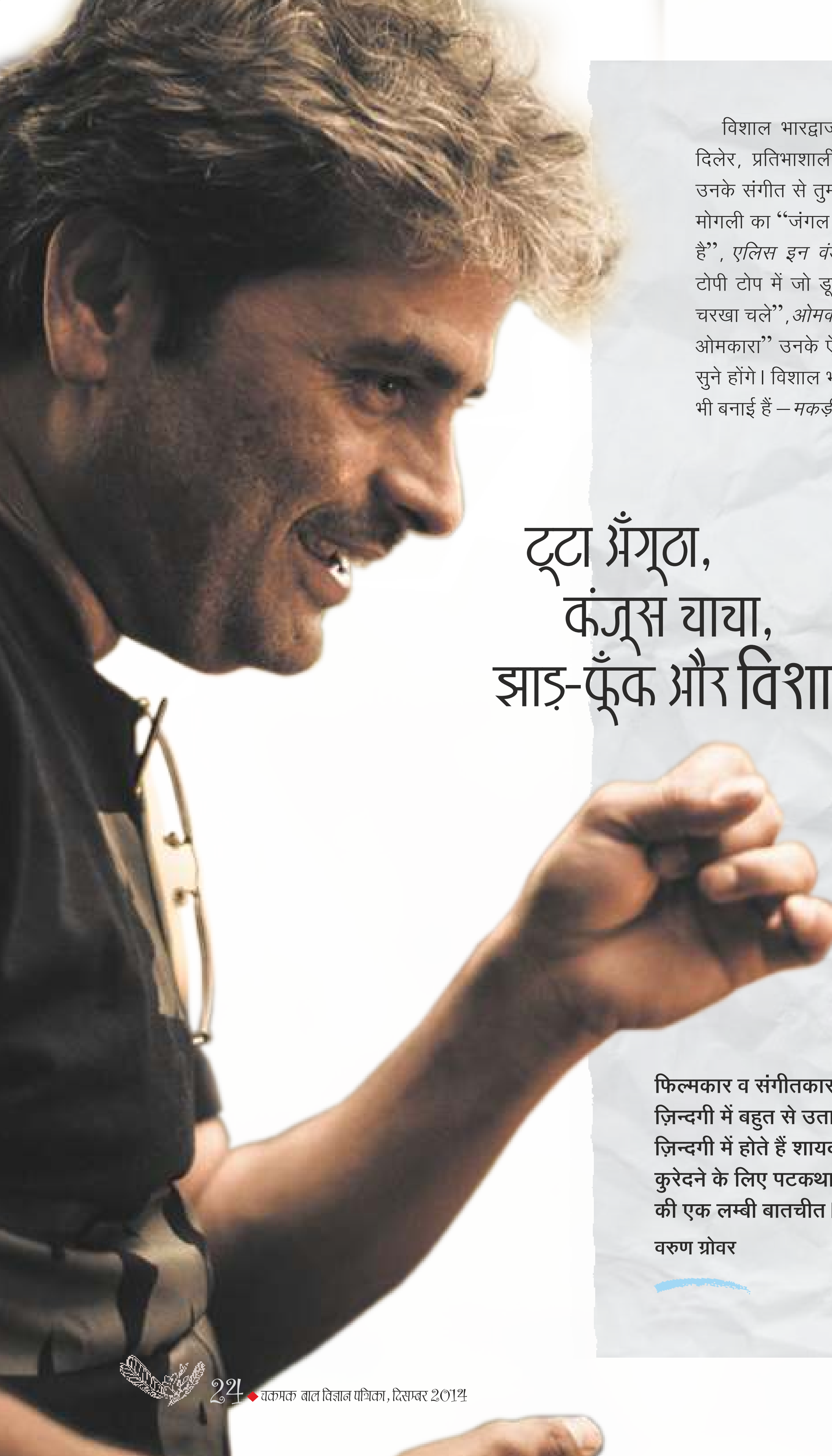

विशाल भारद्वाज आज के हिन्दी सिनेमा के दिलेर, प्रतिभाशाली फिल्मकारों में से एक हैं। उनके संगीत से तुम वाकिफ होगे! *जंगल बुक* के मोगली का "जंगल जंगल बात चली है पता चला है", *एलिस इन वंडरलैंड* वाला "टप टप टोपी टोपी टोप में जो डूबे", *माचिस* का "चप्पा चप्पा चरखा चले", *ओमकारा* का "सबसे बड़े लड़ैया रे, ओमकारा" उनके ऐसे जाने कितने ही गीत तुमने सुने होंगे। विशाल भारद्वाज ने बच्चों की दो फिल्में भी बनाई हैं – *मकड़ी* और *ब्ल्यू अम्ब्रैला*।

टूटा अँगूठा, कंजूस चाचा, झाड़-फूँक और विशाल भारद्वाज

फिल्मकार व संगीतकार विशाल भारद्वाज की ज़िन्दगी में बहुत से उतार-चढ़ाव रहे (जैसे सबकी ज़िन्दगी में होते हैं शायद), और उन्हीं यादों को कुरेदने के लिए पटकथाकार वरुण ग्रोवर ने उनसे की एक लम्बी बातचीत। वही यहाँ पेश है –

वरुण ग्रोवर

चकमकः बचपन से शुरू करते हैं। बिजनौर और मेरठ की क्या-क्या यादें हैं?

विशालः असल में बिजनौर से आगे एक जगह है, नजीबाबाद, वहाँ जन्म हुआ था। वहाँ पाँचवीं क्लास तक पढ़ा। छठी क्लास में आया तो हम लोग मेरठ आ गए।

चकमकः तो जब नजीबाबाद छूटा तो दुख हुआ था? रोए थे? बचपन में दोस्तियाँ छोड़ना बड़ा मुश्किल होता है।

विशालः हाँ, दोस्तियाँ तो हो ही जाती हैं। लेकिन मैं रोया तो नहीं था। क्योंकि मेरठ में हमारा आना-जाना लगा रहता था। मामा वगैरह मेरठ में ही रहते थे। दोस्त छोड़ने में दर्द तो होता ही है और नई जगह में नए दोस्त बनाना और भी कठिन होता है।

चकमकः आप बचपन में अन्तर्मुखी थे या...?

विशालः मैं बहुत ही इंट्रोवर्ट (अन्तर्मुखी) था। बल्कि मैं मेरठ आ के ज़्यादा अन्तर्मुखी हो गया। जब किशोरावस्था आती है उस उम्र में शायद बहुत बच्चे हो जाते हैं।

चकमकः लेकिन आप क्रिकेट भी खेलते थे। तो वो इसके साथ कैसे जाता है? क्रिकेट तो टीम गेम है।

विशालः बल्कि क्रिकेट ने मुझे खोला। आठवीं-नवीं कक्षा में सीरियस क्रिकेट शुरू हुआ तब मैं थोड़ा बदला।

चकमकः तो आप अन्तर्मुखी थे तो पढ़ाकू भी थे क्या?

विशालः (जैसे इलज़ाम लगाया गया हो) नहीं नहीं बिलकुल नहीं। पढ़ने में तो एकदम मन नहीं लगता था। मैं बस शान्त-सा बच्चा था। गणित तो आती ही नहीं थी। मैथ्स में प्रैक्टिस बहुत ज़रूरी होती है और वो मुझसे नहीं होती थी। एक टीचर आते थे ट्यूशन पढ़ाने – पीठ पे मारा करते थे थपा-थप। छठी क्लास से ही ट्यूशन लग गई थी गणित की। एक बार छुट्टियों से वापस आया। स्कूल खुलनेवाला था और देखा कि एक कॉपी थी सवालों से भरी हुई – पन्नों में सवाल ही सवाल। मुझे लगा सिर्फ सवाल लिख के दिखाने होंगे तो मैंने सारे सवाल नोट कर डाले अपनी नई कॉपी में। मुझे लगा ही नहीं कि इतने सारे सवालों के जवाब कोई माँग भी सकता है। दिन भर लग के मैंने सारे सवाल अपनी कॉपी में छापे।

चकमकः तो कुछ फायदा हुआ ट्यूशन से?

विशालः हाँ, बहुत फायदा हुआ। पर बहुत डर लगता था गणित से। उसके बावजूद ग्यारहवीं-बारहवीं भी मैंने साइंस-मैथ्स में ही की। एक तो उस उम्र में दोस्तियों का बड़ा चक्कर होता है। तो जो दोस्त कर रहे हैं वही हम कर लेते हैं। दोस्त ने बायोलॉजी ले ली तो हमने भी ले ली। मेंढक काटना पड़ता था – सोच के अभी भी अजीब लगता है। मेंढक को ऐसे खोल के बिछाना, उसको काटना, उसके अलग-अलग अंगों पे नामवाले झण्डे लगाना – दिल यहाँ, गुर्दा यहाँ – मैं रोता था यह सब कर के।

चकमकः आप स्कूल गए 1970 के दशक में। किस तरह का दौर था वो हिन्दुस्तान में?

विशालः मुझे (इंदिरा गांधी की लगाई हुई) इमरजेंसी याद है। उन्हीं दिनों एक बार स्कूल खाली हुआ जब अफवाह आई कि आज दूरदर्शन पे *शोले* फिल्म दिखाई जा रही है। सब बच्चे फिर गायब कि घर चलो, *शोले* देखेंगे। और साथ ही मेरा पढ़ने का शौक भी उसी दौर में हुआ। कविता, कहानियाँ। जासूसी उपन्यास बहुत पसन्द थे। कविताएँ बहुत पढ़ता था। मेरे पिताजी कवि थे तो इसलिए भी कविताओं का शौक शायद जन्मजात ही मिला हुआ था। एस. सी. बेदी की एक राजन-इकबाल सीरीज़ आती थी जासूसी उपन्यासों की – वो बहुत पढ़ी। थोड़े बड़े हुए तो

फिल्म *ब्ल्यू अम्ब्रैला* की बिनिया
अपनी नीली छतरी के साथ

सुरेन्द्र मोहन पाठक के उपन्यास पढ़ने लगे। फिर जब अँग्रेज़ी पढ़ना शुरू किया तो इर्विंग वॉलेस के *सैकेंड लेडी* जैसे उपन्यास पढ़ गया। पर अँग्रेज़ी देर में ही शुरू हुई। मेरा स्कूल सरकारी था – हिन्दी मीडियम स्कूल था। जब मैं नवीं क्लास में था तो मेरे पिताजी ने कहा तुम्हें अँग्रेज़ी मीडियम स्कूल में डलवा देते हैं। लेकिन फिर वही हुआ – नए स्कूल का डर, नए दोस्त बनाने पड़ेंगे, पुराने दोस्त छूट जाएँगे, और अँग्रेज़ी बोलनेवाले वैसे भी विचित्र लगते थे। इतनी अच्छी इंग्लिश बोलते थे तो उनसे डर लगता था – और इंग्लिश के तो हम लोग अब तक मारे हुए हैं। बचपन में तो और ज़्यादा था। हमारे खून में ही हीन-भावना है। पता नहीं हम कब इस से बाहर निकलेंगे कि जो अँग्रेज़ी बोलता है वो ज़्यादा समझदार आदमी है।

चकमकः हाँ, उत्तर भारत में तो यह हीन-भावना बहुत ज़्यादा है।

विशालः हाँ और जब मैं कॉलेज गया तो मुझे लगा कि उस वक्त क्यों मैंने तबादला नहीं ले लिया अँग्रेज़ी मीडियम स्कूल में। मैं सालों इस अफसोस में रहा। लेकिन जब बम्बई आकर फिल्में बनाना शुरू कीं तब समझ में आया कि इसके पीछे ऊपरवाले का क्या गणित था। अगर मैं उस हिन्दी मीडियम स्कूल में ना पढ़ा होता तो ना ही मेरी यह ज़बान होती और ना ही मैंने वो दुनिया देखी होती। सरकारी स्कूल था जिसमें समाज के हर वर्ग से बच्चे थे – सबकी अलग-अलग कहानियाँ थीं। तो एक तरह से हिन्दुस्तान क्या है, वो मुझे उस स्कूल में ही पता चल सकता था। उसके बाद से, मेरे साथ कभी भी कुछ गलत होता है तो मैं मान लेता हूँ कि ज़रूर इसमें कुछ बहुत अच्छा छुपा है। उत्तर भारत में तो इतना ज़्यादा हौव्वा था अँग्रेज़ी का, इसलिए भी अँग्रेज़ी मीडियमवाले थोड़े अकड़ू दिखाई देते थे – वो होंगे नहीं, लेकिन लगते थे। मेरी हीन-भावना का वो हाल था कि जब कॉलेज में आ के मैं हिन्दी माध्यम में इम्तिहान दे रहा था, तो मैं हिन्दी की अपनी किताबें इंग्लिश किताबों के अन्दर छुपा के तैयारी करता था, ताकि किसी को पता ना चले कि यह हिन्दीवाला है। किस दर्जे की हीन-भावना दी है समाज ने अपनी ही भाषा के लिए! हिन्दुस्तान दुनिया का अकेला देश होगा जहाँ अपनी ही भाषा को लेकर हिकारत की नज़र होती है।

चकमकः 1984 के दंगों की भी कुछ याद है? उस समय तो आप दिल्ली में ही रहे होंगे।

विशालः हाँ बहुत कुछ याद है। उस समय तो मैं कॉलेज में था। बहुत ही दहशत के दिन थे। 9-10 दिन तो हम हॉस्टल में ही कैद रहे थे। अच्छे-खासे पढ़े-लिखे लोगों को हमने देखा दुकानें लूटते हुए। टीवी उठा के भाग के जाते हुए। बहुत ही खराब दिन थे। (चुप हो जाते हैं, कहीं दूर खोए हुए से।)

चकमकः अच्छा, किस तरह की कविताएँ पसन्द थीं आपको?

विशालः कबीर बहुत पसन्द थे। उनके दोहे अब तक याद हैं जो उस उम्र में पढ़े थे।

कांकर पाथर जोड़ के, मस्जिद लियो बनाए,
ता चढ़ी मुल्ला बांग दे, क्या बहरा हुआ खुदाए।

पाहन पूजे हरी मिले, तो मैं पूजूं पहाड़
तासे ये चाकी भली, पीस खाए संसार।

मेरे अभी भी रौंगटे खड़े होते हैं कि एक कवि ने इतने सालों पहले ऐसे विचार दुनिया को दिए।

चकमकः क्रिकेट कैसे आया आपकी ज़िन्दगी में और क्यों चला गया?

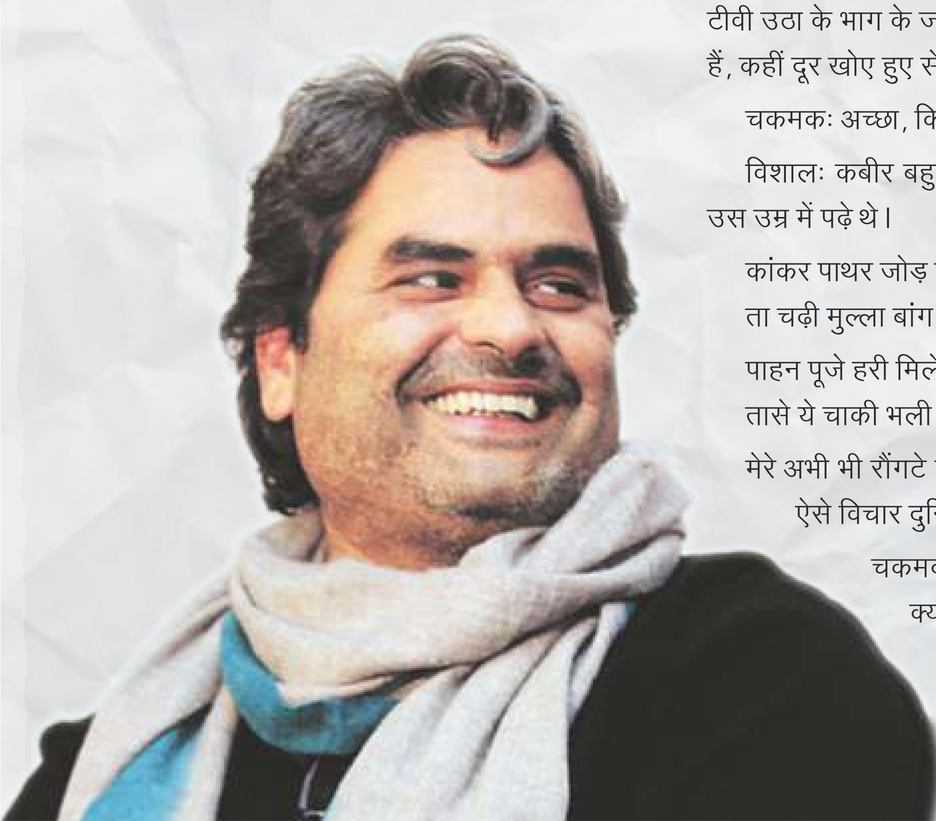

विशालः छठी क्लास से ही क्रिकेट खेलना शुरू कर दिया था और सातवीं में आते-आते कोचिंग भी लेने लगा था। बारहवीं में मैं अपने राज्य, उत्तर प्रदेश, की तरफ से सी. के. नायडू ट्रॉफी में खेला।

चकमकः लेकिन क्रिकेट उस वक्त, 1983 के विश्व कप से भी पहले आप तक पहुँचा कैसे? टीवी पे आता था क्या उन दिनों भी?

विशालः टीवी पे मुझे तो धुँधला-सा याद है कि आता था। एक डॉक्टर साब थे उनके घर जाते थे हम टीवी देखने। बाकी टाइम तो बस मच्छर ही दिखते थे परदे पर। फिर बीच-बीच में, कोई एक छवि साफ दिख जाती थी। फिर लोग 2 घण्टे तक इन्तज़ार करते रहते थे कि फिर से कुछ दिखेगा। जादू का डब्बा लगता था ना तब तो कि ये ऐसे कहाँ अचानक से ये चित्र आ रहे हैं। फिर 1982 में एशियाड (एशियन गेम्स हुए थे दिल्ली में) हुआ तो हिन्दुस्तान में रंगीन टीवी आया। तब हमारे घर भी टीवी आ गया। एक मौसा जी थे हमारे, कंजूस मौसा जी नाम से, उनके घर अगर गर्मियों में पाँच नम्बर पे पंखा चल रहा होता था तो वो आके तीन पे कर देते थे कि पाँच पे बत्ती ज़्यादा फुँकेगी। वही कहते थे बचपन में कि हम टीवी तब लेंगे जब भारत में रंगीनवाला आएगा। और हम लोग कहते थे ना कभी रंगीन टीवी आएगा ना मौसा जी कभी लेंगे। खैर, 1982 में वो आ ही गया।

चकमकः फिर आपका छूटा कैसे क्रिकेट?

विशालः मैं दिल्ली आया उसकी वजह क्रिकेट थी। मेरी ज़िन्दगी क्रिकेट की वजह से बदली। मैं उत्तर प्रदेश की टीम से खेल रहा था स्कूली प्रतियोगिताओं में लेकिन वहाँ किसी ने शिकायत लगा दी। कोई तकनीकी नुक्स निकाल के। क्योंकि मैं बारहवीं दोबारा देकर खेल रहा था और रूल था कि बारहवीं रिपीट करनेवालों को टीम में नहीं लिया जा सकता। तो मेरा पूरा साल बर्बाद हो गया। और यह शिकायत मेरे एक दोस्त ने ही लगाई थी – तो मेरा दिल टूट गया। तो मैंने सोचा मैं इस राज्य (उत्तर प्रदेश) के लिए ही नहीं खेलूँगा – यहाँ बहुत राजनीति होती है। उस समय तक उत्तर प्रदेश से वैसे भी राष्ट्रीय स्टार के खिलाड़ी नहीं बना करते थे – एक गोपाल शर्मा और एक विजय शुक्ला ही थे बस। तब मैं दिल्ली आ गया। खेल कोटा में मुझे हिन्दू कॉलेज में एडमिशन मिल गया। और यहाँ दिल्ली में जब टीम चयन का महीना आया तो मैच से एक हफ्ता पहले ही मेरा अँगूठा टूट गया नेट में प्रैक्टिस करते हुए। उसी साल मेरे पिता भी गुज़र गए तो उसके बाद सब मुश्किल-सा हो गया। क्रिकेट तभी खेला जा सकता है जब आर्थिक स्थिति ठीक हो। वर्ना उतनी बड़ी क्रिकेट किट लेकर दिल्ली की लोकल बसों में चढ़ना, धक्के खाना, खाने के भी पैसे ना हों तो मुश्किल होता है। उन दिनों दोस्तों ने बड़ी मदद की। खाने को कुछ ले आते थे। हॉस्टल की मेस में भी मेरा नाम सबसे ऊपर था उन लोगों में जिनके पैसे बकाया हैं। तब भी दोस्त कमरे पे खाना ले आते थे। मेस के महाराज भी चोरी से खिला देते थे कभी-कभी।

चकमकः तब फिर संगीत की दुनिया में कैसे पहुँचे?

विशालः उसी दौरान फिर मेरे बहुत से दोस्त बने जो संगीत में बड़ी रुचि रखते थे। कॉलेज में रेखा जी से मुलाकात हुई और उनसे प्यार हो गया। वो कॉलेज की स्टार थीं। बहुत अच्छा गाती थीं। तो मैं भी संगीत की तरफ चल निकला।

गुस्सा गुस्सा नाक से उछला, ठोड़ी पे बैठा, फिर सीधा घुटनों से आके टखनों पे उतरा

चकमकः अच्छा अब कुछ झटपट सवाल। सबसे ज़्यादा सपने किस दौर के आते हैं?

विशालः मुझे बहुत सपने ही नहीं आते। वही साधारण सपने जो सबको आते हैं – ट्रेन छूट गई, परीक्षा में देर से पहुँचे या प्रश्न पत्र सामने है और हमें कुछ नहीं आता।

चकमकः इस से पहले आपकी ज़िन्दगी में संगीत बिलकुल नहीं था क्या?

विशालः मैं बचपन में बैंजो बजाता था थोड़ा। पिताजी कवि थे। कुछ हिन्दी फिल्मों के लिए गीत भी लिखे थे उन्होंने। घर में कविता का माहौल था तो संगीत बनाने का भी था। डॉक्टर बशीर बद्र मेरे बहुत अज़ीज़ हैं। मेरठ में ही रहते हैं। वो घर आते रहते थे। लेकिन मेरा झुकाव कविताएँ रचने से ज़्यादा धुन बनाने में था बचपन से ही।

चकमकः ज़िन्दगी के जो तीन दौर आपने देखे – बचपन, फिर कॉलेज के दिन जहाँ आपको पता चला कि आप क्या करना चाहते हैं, और यह दौर जहाँ आप एक सफल निर्देशक और संगीतकार हैं, इन तीनों में सबसे खूबसूरत दौर कौन-सा लगता है?

विशालः हर दौर अपने आप में मज़ेदार ही होता है। पुरानी यादों का अपना मज़ा है। बचपन की वो सुनसान दोपहरी जब पूरा शहर सो रहा है और हम बच्चे जामुन तोड़ने निकल पड़े हैं, यह सब याद करना हमेशा ही अच्छा लगता है। लेकिन जो लम्हे निकल गए वो वापस नहीं आते। उनका स्वाद दिमाग में रह जाता है पर ज़बान पे दोबारा नहीं आ सकता। जब जो हो रहा होता है तब लगता ही नहीं कि वक्त ऐसा नहीं रहेगा।

चकमकः सबसे बड़ा डर?

विशालः बचपन में मेरे परिवार के एक सदस्य को कुछ हो गया। सबने कहा उस पे भूत आ गया है। अब पता नहीं क्यों उसका भूत उतारने के लिए उसे किसी झाड़-फूँकवाले मौलवी के पास ले गए। और ले गए तो ले गए, मुझे साथ में क्यों भेज दिया? तो वहाँ का माहौल जो था, हमसे पहले जो लाइन में नम्बर लगा के बैठे थे उनको देखा मैंने। वो मौलवी फूँक मारता था, फिर बाल पकड़ के झुलाता था, फिर नाक को दो उँगलियों के बीच ज़ोर-से पकड़ के खींचता था और बोलता था लो आ गया भूत पकड़ में। फिर "उस भूत" को एक मिट्टी की एक छोटी-सी हण्डिया में ऊपर से कागज़ और रबर-बैंड लगा के बन्द करके रख देता था। इसका मेरे दिमाग पे इतना गहरा और डरा देनेवाला असर पड़ा कि मैं सालों तक इस भूत वगैरह के डर से जूझता रहा। इसलिए भी शायद मेरी सबसे पहली फिल्म *मकड़ी* थी जिसमें अन्धविश्वास और भूत-प्रेत के विचार पर बात थी।

चकमकः तो *मकड़ी* बनाने के बाद डर काम हुआ क्या?

विशालः डर नहीं था असल में, एक अजीब-सी बेचैनी थी। क्योंकि डर भूत का या किसी और चीज़ का नहीं होता। डर सबको होता है मौत का। जो जीवन का अन्तिम सत्य है।

चकमकः तो मौत का डर है?

विशालः कौन नहीं डरता? झूठ कहेगा जो कहेगा वो नहीं डरता। लेकिन मज़े की बात यह भी है कि जब तक जी रहे हैं तब तक लगता है हम नहीं मर सकते। किसी की अर्थी जा रही हो तो हमेशा यही खयाल आता है कि "कोई और मर गया।"

कौन नहीं डरता?
झूठ कहेगा
जो कहेगा वो नहीं डरता।

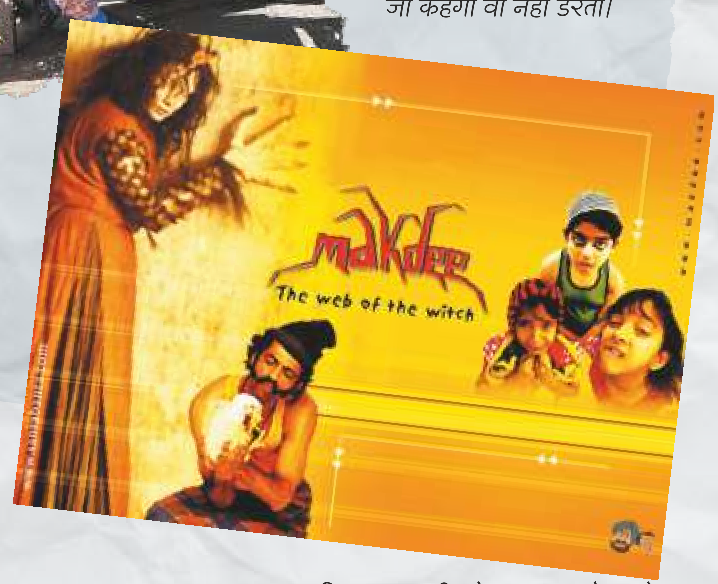

फिल्म *मकड़ी* और *ब्ल्यू अम्ब्रैला* से

चकमकः जीवन के सबसे ज़्यादा खुशी के पल?

विशालः पहला तो यही है कि गुलज़ार साब से मेरा मिलना और उनके लिखे गीतों की धुन बनाना, और उन धुनों को लता मंगेशकर जी द्वारा गाया जाना। यही सबसे बड़े खुशी के पल हैं।

चकमकः अब गुलज़ार साब पे हम आ ही गए हैं तो आपका उनके साथ सबसे पहला मशहूर गाना – *जंगल बुक* का “जंगल जंगल बात चली है पता चला है, चड्डी पहन के फूल खिला है फूल खिला है” कैसे बना?

विशालः एक दिन गुलज़ार साब का फोन आया – कल इतवार है। घर आ जाओ। एक गाना बनाना है और सोमवार को रिकॉर्ड करना है। काम एकदम जल्दी में करना था क्योंकि दूरदर्शन पे कोई सीरियल अचानक से शुरू होनेवाला था। मैं चला गया और उन्होंने बताया कि *जंगल बुक* नाम से एक बच्चों का धारावाहिक शुरू हो रहा है तो कुछ ऐसा बनाते हैं जो बच्चों को मज़ेदार लगे। तो गुलज़ार साब की ही एक कविता थी जिसे मैंने धुन में पिरोया था कभी – “गुस्सा गुस्सा नाक से उछला, ठोड़ी पे बैठा, फिर सीधा घुटनों से आके टखनों पे उतरा”। उन्होंने कहा यह धुन अच्छी है। लाओ इसी धुन को पकड़ के कुछ लिखते हैं। उसके ऊपर उन्होंने फिर वो लाइनें लिखीं – “जंगल जंगल बात चली है पता चला है” (बच्चों के लिए होम-वर्क – इन दोनों लाइनों को एक ही धुन में गाने की कोशिश करो। मज़ा आएगा और एक गीत का “मीटर” क्या होता है वो भी समझ आएगा)। पूरा गाना आधे घण्टे में ही हो गया। उन्हीं के शब्दों से मैंने धुन बनाई, और उसी धुन पर उन्होंने नए शब्द लिखे।

चकमकः इसके बाद आपने बच्चों की फिल्में *मकड़ी* और *द ब्ल्यू अम्ब्रैला* (नीली छतरी) भी बनाई – लेकिन उसके बाद आप लौटकर नहीं गए बच्चों की दुनिया में?

विशालः मुझे बहुत मज़ा आता है बच्चों के लिए काम करने में, लेकिन उसके बाद अब तक हो नहीं पाया। और भी बहुत-सी कहानियाँ हैं जो कहनी हैं।

चकमकः पिछले कुछ सालों में बच्चों से जुड़ी किताबें या सिनेमा – क्या सबसे अच्छा पढ़ा और देखा?

विशालः ईरानी फिल्मों में अच्छा काम हो रहा है। मराठी सिनेमा में भी कुछ बहुत अच्छी फिल्में बनी हैं हाल में – *शाळा* नाम की एक फिल्म आई थी, अमोल गुप्ते की फिल्म *स्टैनली का डब्बा* मुझे बहुत पसन्द है। और किताबों में रस्किन बॉन्ड साब की कहानियाँ, और आपकी *चकमक* तो बढ़िया काम कर ही रही है।

चकमकः शुक्रिया विशाल साब, इस शानदार लम्बी बातचीत के लिए।

एक प्रयोग

विवेक मेहता

दो गुब्बारे लो। इन में से एक में थोड़ा-सा पानी भर लो। अब दोनों को फुला लो। एक मोमबत्ती जला लो। इन दोनों गुब्बारों को नीचे से यानी पेंदी से गर्म करो। तुम्हारे अनुभव हमें लिख भेजो। इस प्रयोग को ध्यान से करना।

हमारा पताः
चकमक
ई 10 शंकर नगर, शिवाजी नगर,
भोपाल - 462016
या ईमेल करो -
chakmak@eklavya.in

भूल सुधार

पिछले अंक में जगदीश चन्द्र बसु का विज्ञान गल्प भगौड़ा चक्रवात तुमने पढ़ा होगा। इस कथा का बांग्ला से अँग्रेज़ी अनुवाद बोधिसत्व चट्टोपाध्याय ने किया था और अँग्रेज़ी से हिन्दी अनुवाद वरुण ग्रोवर ने किया था। यह जानकारी छूट जाने का हमें खेद है।

एक पंजा बाघ का

दिलीप चिंचालकर

दो दिनों से हमारे घर में एक बिल्ली ने ऊधम मचा रखा था। न जाने कहाँ से घुस आती और रसोईघर पर धावा बोल देती। वह छापामारों की तरह काम करती। जब कोई आसपास न हो तब आती। जैसे उसे पता हो। यूँ भी घर में हैं ही कितने लोग – बूजी (माँ), जीजू (दीदी), मैं और दरबार। दरबार अभी मानाखेत गए हैं शेर की खोज में। जीजू चले जाते हैं कॉलेज। बचे बूजी और मैं।

आनन्द चौदस की सुबह मुँह अँधेरे अहाते में दरबार की जोंगा जीप के ठहरने की आवाज़ आई। आधी नींद में भी मुझे रोमांच हो आया क्योंकि अब बिल्लीवाले मामले में तफ्तीश शुरू होनेवाली थी। रात से रह-रहकर बारिश हो रही थी। मौसम ठण्डा हो गया था और मेरा मन अभी दोहर में दुबके रहने का था। मगर मेरा जल्दी ही चाय की मेज़ पर पहुँचना ज़रूरी था। क्योंकि बूजी एफ.आई.आर. में क्या दर्ज़ करवाती हैं यह जानना ज़रूरी था। उसी आधार पर ही तो मैं सबूतों में कुछ घटा या बढ़वा सकता था। बूजी के बयान में उनकी भावुकता इस घटना का रूप बदल सकती थी। मसलन बिल्ली को दुष्ट या बेचारी कहने भर से वारदात की गम्भीरता तय होनेवाली थी। दरबार की ऐसे मसलों में बड़ी दिलचस्पी रहती है। मुझे भरोसा था कि वे चाय के साथ अखबार के पन्ने पलटने की बजाय इसी पर बातचीत शुरू कर देंगे।

दरबार, मेरे दाता, धार ज़िले के सादलगढ़ ठाकुर हैं। दादू सा वहीं पर बगड़ी नदी के किनारे बनी गढ़ी में रहते हैं। नदी के उस पार दूर-दूर तक फैली उनकी ज़मीन है। आधी से ज़्यादा ज़मीन पर जंगल था। कुछ वर्ष पहले वहाँ दो तेन्दुए घुस आए। कहते हैं दरबार ने ही उन्हें वहाँ लाकर छोड़ा था। उन तेन्दुओं ने आसपास के देहातों में खूब उत्पात मचाया। तब गाँववालों की फरियाद पर दादू सा ने तेन्दुओं को पकड़वाकर शहर के चिड़ियाघर भिजवा दिया और जंगल खत्म कर दिया। इस पर दरबार का दिल टूट गया और वे शहर आ गए। अब दादू सा गढ़ी के बुर्ज़ पर से दूरबीन लगाकर खेतों की निगरानी करते हैं। कभी-कभी घोड़े पर सवार हो खेतों की सैर कर आते हैं।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि दरबार का दिल बड़ी बिल्लियों से लगा था। हमारी छुट्टियाँ गढ़ी से ज़्यादा शेर-सिंहों की टोह में देश भर के जंगलों में बीतती। ज़रा कहीं कोई पत्ता गिरा, टहनी टूटी कि दरबार कारखाने का काम छतरसिंहजी के हवाले छोड़ उधर रवाना हो जाते। अभी मानाखेत-सेमलगढ़ से खबर आई थी कि एक शेर निकल आया है। उसने गाँव की एक गाय को गिराया है। दरबार वहीं अपनी शौकिया जाँच-पड़ताल करने गए थे। आज घर लौटे हैं।

इस शैतान बिल्ली ने दो दिनों में चार बार घुसपैठ की थी। हर बार वह बूजी की बनाई खोए की रोटी ले उड़ी थी। उसके आने का समय दोपहर और देर रात का होता। कभी वह मैदे की कटोरी उलट गई तो कभी दूध की पतीली ढोल गई। रात को कीचड़ से सने पंजे लेकर घर में घुस आई। बूजी को दुख उनकी खोए की रोटियाँ जाने का था। घर में वे सभी को पसन्द थीं। बच्चों ने ज़्यादा ही खा ली थीं। चार दरबार के लिए रख छोड़ी थीं। बिलौटी वह भी साफ कर गई थी।

मैं कुछ नहीं बोला। बूजी की रपट ध्यान से सुनता रहा। बीच-बीच में दरबार की ओर देख उनकी प्रतिक्रिया जानने की कोशिश करता रहा। वे चुप ही रहे। रसोईघर से निकले बिल्ली के पंजों के निशान वे पहले ही देख चुके थे। सुनवाई पूरी हो गई और सभा बर्खास्त।

दूसरे दिन सुबह नाश्ते की मेज़ पर दरबार ने मुझसे कहा, “भँवरलाल, रात के खाने के बाद मुझे कचहरी में मिलो।” मेरा नाम ऐसा नहीं है मगर मैं एक ठाकुर साहब का पोता जो हूँ। दरबार मुझे इस तरह ओहदे के साथ तभी पुकारते हैं जब बात विशेष हो – मेरे जन्मदिन पर या मेरा रिपोर्ट कार्ड देखने के बाद।

मैं चाहकर भी मेरी नज़रें झुका नहीं पा रहा था।

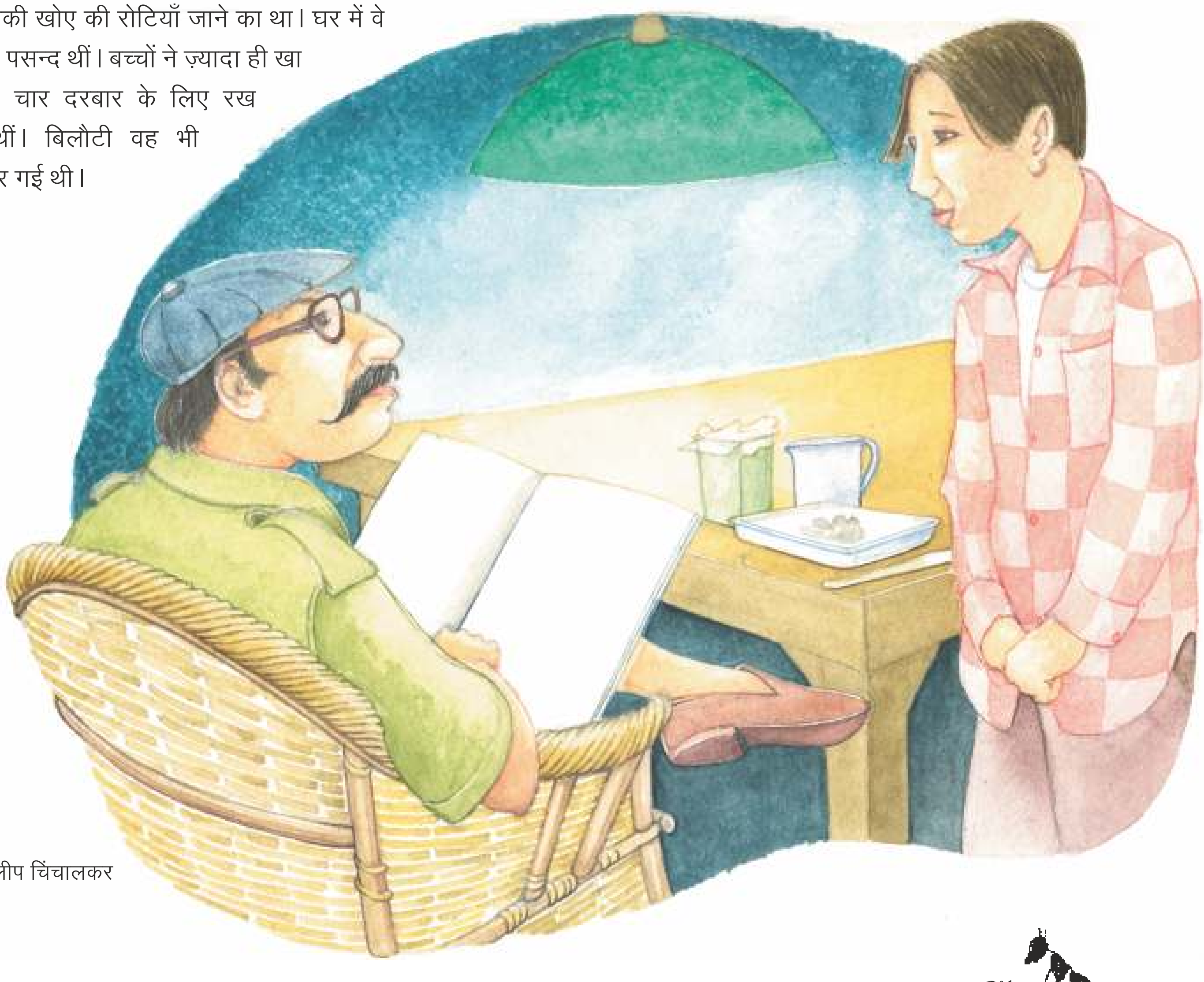

चित्रः दिलीप चिंचालकर

मैं निरा अनाड़ी तो साबित हुआ ही। दरबार को अफसोस था कि उनका बेटा बिल्लियों को समझ ही नहीं पाया।

दरबार की कचहरी एक अनोखी जगह है। यहाँ उजाला कम, हवा भारी और अजीब गन्ध लिए होती है। लकड़ी की अलमारियाँ, उनमें दुनिया भर की जंगल और जानवरों की किताबें और फिल्में रखी हैं। शीशे की अलमारी में कुछ नई-पुरानी चमचमाती बन्दूकें जो वे एक-एक कर गढ़ी से ले आए हैं। बारिश के बाद उनकी सफाई वे खुद फुलथ्रू से करते हैं और दशहरे पर उनमें कारतूस भर के हर्ष फायर भी। बीच में शीशम की एक बड़ी मेज़ है और नीचे तक लटका हुआ एक लैम्पशेड। मेज़ के उस छोर पर ताज़ा प्लास्टर से भरा एक साँचा सूख रहा है जिसमें मानाखेत के शेर के पैर का निशान है। अलग-अलग जगहों से एकत्र किए ऐसे कई पगचिह्नों के प्लास्टर के साँचे दीवार पर लगे हैं। कुछ बाघ के हैं। कुछ भालू, भेड़ियों और सियारों के हैं। मेज़ पर बिल्ली के पंजों की बड़ी की हुई तस्वीर भी रखी है। "आपने ऐसे कैसे किया?" दरबार ने शान्त स्वर में मुझसे पूछा। यह सवाल समझने में मुझे थोड़ा समय लगा। यह समझने में कि वे मुझसे इस बात पर सलाह करने के लिए, मेरे किए का सबब जानने के लिए पूछ रहे हैं। मेरे मन का चोर आखिर पकड़ा गया था। एकदम से बोलना बेमानी था।

"मैं खुद को रोक नहीं पा रहा था खोए की रोटियाँ खाने से।"

"इसलिए अपना दोष आपने एक बिल्ली पर डालना ठीक समझा? एक झूठ-मूठ की बिल्ली पर?"

मैं चाहकर भी अपनी नज़रें झुका नहीं पा रहा था। दरबार ही कहते हैं कि हमेशा आँखों में आँखें डालकर बातें करो। आँख हटी तो जानवर हमला कर देगा।

दरबार बोले, "मुझे आश्चर्य इस बात पर है कि आपने बिल्ली को इतना मामूली और फूहड़ समझा।" फिर पंजों के चित्र मेरे आगे सरकाकर दिखाने लगे। "ये पगचिह्न सियार के हैं। आपने कचहरी में रखे साँचे में प्लॉस्टिसिन भर के पगचिह्न उठा तो लिए मगर दो जानवरों में फर्क नहीं कर पाए। रसोईघर में पगचिह्न छापने के लिए आपने हर बार कुछ गिराया। बिल्ली इतनी फूहड़ नहीं होती कि कुछ गिराए बगैर चल ही न पाए। फिर आपने इस बात पर भी गौर नहीं किया कि चारों पैरों के पंजे अलग-अलग निशान छोड़ते हैं।"

सच, यह बात तो मेरे दिमाग में आई ही नहीं थी।

"बिल्ली जैसा सफाईपसन्द प्राणी कीचड़ में कभी पैर नहीं रखेगा। इस अहाते में कीचड़ है भी नहीं। और क्या बिल्ली हर बार कसी स्प्रिंग का दरवाज़ा ताकत से बाहर खींचकर अन्दर आई?"

कितना शर्मिन्दा हुआ मैं आज। सोच रहा था कि मुझ-सा चालाक और कोई नहीं। यहाँ तो मैं निरा अनाड़ी साबित हुआ हूँ। दरबार को अफसोस था कि उनका बेटा बिल्लियों को समझ ही नहीं पाया।

अगली सुबह उन्होंने बूजी को अपनी जाँच का नतीजा बताया। बिल्ली नहीं एक सियार था। अब दुबारा नहीं आएगा। मैंने मानाखेत से बाघ की विष्ठा लाकर रखी है। उसकी गन्ध से दब्बू प्राणी पास भी नहीं फटकते।

माथापच्ची

1 जंग लगने से लोहे की एक कील का वज़न बढ़ जाएगा, घट जाएगा या पहले जितना ही रहेगा?

2
गर्म पानी से नहाने पर गुसलखाने में लगा आइना धुँधला क्यों हो जाता है?

यह खिड़की अन्दर की ओर खुली है या बाहर की ओर? 4

बिना जोड़े 3 फटाफट बताओ कि

432
+432
+432
+432
+432
+432
+864
+864 = ?

5
अर्शी, सिराज़ और प्रिया तीनों सीपियाँ इकट्ठा कर रहे थे। अर्शी ने सिराज़ से दुगुनी सीपियाँ इकट्ठी कीं और प्रिया ने अर्शी से एक सीप ज़्यादा। सिराज़ ने कुल 12 सीपियाँ इकट्ठी कीं। तुम्हें बताना है कि तीनों में से सबसे कम सीपियाँ किसने इकट्ठा कीं?

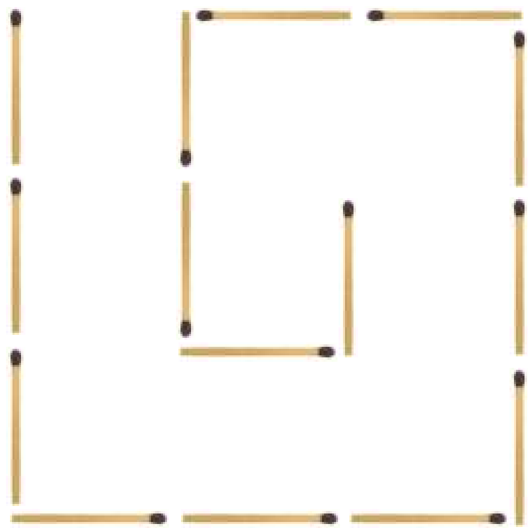

6 क्या तुम इस चित्र में दिखाई सिर्फ तीन तीलियों को इधर-उधर करके चौकोर बना सकते हो?

7 खज़ाने से भरे एक सन्दूक में तीन ताले लगे हुए हैं। तीनों तालों के छेद का आकार अलग-अलग है। एक का त्रिभुज, एक का चौकोर और एक का गोल। इन्हें खोलने के लिए एक ऐसे आकार की चीज़ चाहिए जो चाबी की तरह काम करे। शर्त यह है कि वह तीनों तालों के छेद में फिट होनी चाहिए। क्या तुम ऐसी एक चाबी बना सकते हो?

– मनीष जैन

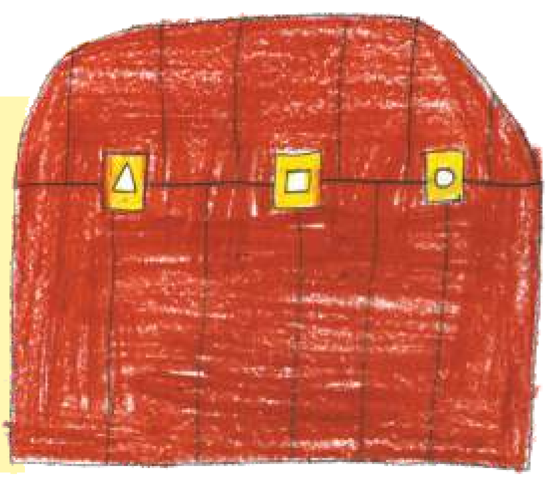

इस बारिश में

नरेश सक्सेना

जिसके पास चली गई मेरी ज़मीन
उसी के पास अब मेरी
बारिश भी चली गई

अब जो घिरती हैं काली घटाएँ
उसी के लिए घिरती हैं
कूकती हैं कोयलें उसी के लिए
उसी के लिए उठती है
धरती के सीने से सौंधी सुगन्ध

अब नहीं मेरे लिए
हल नहीं बैल नहीं
खेतों की गैल नहीं
एक हरी बूँद नहीं
तोते नहीं, ताल नहीं, नदी नहीं, आर्द्रा नक्षत्र नहीं
कजरी मल्हार नहीं मेरे लिए

जिसकी नहीं कोई ज़मीन
उसका नहीं कोई आसमान।

अगली फसल होते ही सब चुकता कर दूँगा
अब तो मेरी झूठी
ये गुज़ारिश भी चली गई
उसी के पास अब मेरी बारिश भी चली गई।

सभी चित्रः शिवांगी सिंह

कवि का बयान

कोई दृश्य या चीज़ अपने आप में अकेली नहीं होती। उसके पीछे उससे जुड़ी चीज़ों का एक लम्बा सिलसिला होता है।

हम बिजली का बटन दबाते हैं और बल्ब जल जाता है। लेकिन इस बटन के पीछे तार हैं, खम्भे हैं, ट्रान्सफॉर्मर है, बिजलीघर में पानी की धार से घूमती टरबाइन है, या भाप के बॉयलर हैं, कोयले की भट्टियाँ हैं और बहुत दूर कोयला खदानों में मज़दूर हैं। मज़दूर जो अकसर फेफड़ों में कोयला भर जाने से या सुरंगों के धसक जाने से ज़िन्दा दफन हो जाते हैं।

इस कविता में किसान की ज़मीन छिन जाने की कथा है। किसान की ज़मीन छिन जाने के पीछे की कड़ियाँ क्या होंगी?

इस कविता में उन कड़ियों के बारे में साफ-साफ कुछ नहीं कहा गया है। पर यह कविता एक किसान की ज़मीन छिन जाने तक की कड़ियों और ज़मीन छिन जाने के बाद की कड़ियों में ही कहीं स्थित है।

आमतौर पर मैं गद्य में लिखता हूँ लेकिन कविता को अन्तिम रूप जब देता हूँ तो उसे बोलकर देता हूँ। इससे कभी-कभी उसमें लय भी आ जाती है।

यह एक किसान का बारिश के मौसम का शोकगीत है।

- नरेश सक्सेना

इस बारिश में

खेत की याद में

बारिश चली जाती। घर सँवारने के लिए मिट्टी खेत से आती। हर घर में थोड़ा-थोड़ा खेत रहने चला आता। घर में भी खेत की महक आती रहती। जब खेत जाते तब भी वही महक साथ रहती। इसलिए खेतों में घण्टों बीत जाते पर मन में ख्याल ही न आता कि घर से दूर हैं। मन में घर और खेत एकमएक हुए रहते। खेत बिक जाने से बड़ा दुख कोई न होता। खेत बिक जाने के बाद कई बार उसी खेत पर मजदूर बनकर जाना पड़ता। मिट्टी लेने के लिए बिक चुके खेत की तरफ जाते तो, पर मेड़ से ही लौट आते। अपने खेत की मिट्टी के बिना घर उधड़ता चला जाता। और कभी-कभी वह भी खेत की तरह हाथ से निकल जाता।

(चकमक नवम्बर 2013 से)

मेरा पन्ना

जादुई तारा

एक तारा था। वह सुबह देखना चाहता था। एक दिन वह अपनी माँ से बोला, “माँ, मुझे सुबह को देखने का बहुत मन है।” माँ ने कहा, “तुम सूरज के पास क्यों नहीं जाते?” तारा सूरज के पास गया। उसने सूरज को अपनी बात बताई। सूरज बोला, “अभी थोड़ा वक्त दो। मैं बताता हूँ।” सूरज के पास एक बड़ा मैदान था। वह तारे से बोला, “तब तक तुम इस मैदान में खेलो।” खेलते-खेलते दो दिन गुज़र गए। तारा और उसके दोस्त बहुत खेले। दोपहर को सूरज आया। और बोला, “तुम्हें क्या सुबह को देखना है?” “हाँ। पर कब?” तारे ने पूछा। अगले दिन आसमान कुछ अलग लग रहा था। सूरज और तारा एक साथ चमक रहे थे।

—विनायक मिश्रा,
दूसरी, डी.पी.एस पटना, बिहार

सरिता

कूल से बहती सरिता
लहरों में मिल जाती है

खुशी-खुशी वह जल देती है
आनन्द में बह जाती है

—मीठी देशमुख,
तीसरी, अमरीका

पानी सबको देती सरिता
चमक चेहरों पर लाती है

हर साल बढ़ती सरिता
बूँदों से जब मिल जाती है

भेदभाव नहीं करती सरिता
सबकी प्यास बुझाती है

— अनन्या जैन,
छठी, इन्दौर, म. प्र.

—निशा गोसालिया, चौथी,
आर्किड स्कूल, पुणे, महाराष्ट्र

जाड़े की बात

जाड़े की यह बात है
गर्मी से निजात है
मौसम बहुत प्यारा है
कितना सुन्दर नज़ारा है
चकाचक दिन है
खिली-खिली धूप है
नरम-नरम घास पर
मोतियों-सी बूँद है

— वैष्णवी, छठी,
बाल भवन किलकारी,
पटना, बिहार

मेरा पन्ना

बस्ता

बस्ता बेहद भारी है
कैसी यह लाचारी है
उठाना इसे मजबूरी है
क्योंकि पढ़ना बहुत ज़रूरी है

—हालिदा, दूसरी, अपना स्कूल पनकी पड़ाव, कानपुर, उ. प्र.

न भूलने वाली घटना

मैं लखनऊ में अपने बुआ-फूफा, दीदी और अंकल के साथ रहता था। एक दिन मेरी चाची की मृत्यु हो गई थी। मैं उनकी मृत्यु पर सभी के साथ आ रहा था। हम एक पुल के पास पहुँचे वहाँ पर काफी ट्रैफिक था। मेरी बुआ, भाई और फूफा एक बाइक पर थे और मैं, दीदी और अंकल एक बाइक पर थे। एक ट्रक धीमी गति में चल रहा था। अंकल काफी देर से आगे निकलना चाहते थे। वे जैसे ही आगे बढ़े तो सामने से ट्रक ने टक्कर मार दी। मैं और दीदी झाड़ियों में जा गिरे। अंकल की वहीं मृत्यु हो गई। मेरा एक पैर फैक्चर हो गया। और मेरी दीदी के एक हाथ और और एक पैर में फैक्चर हो गया। मेरे सर में काँटे चुभ जाने के कारण मेरे सर से खून बह रहा था। मेरे फूफा आगे निकल चुके थे उन्हें जब ये खबर मिली तो उन्होंने जल्दी से घर पर खबर कर दी। मेरे फूफा वहाँ पहुँच चुके थे। थोड़ी देर बाद जब मुझे होश आया तो मैं घर पर था और मेरी बुआ और दीदी हॉस्पिटल में। कुछ दिन बाद मुझे भी हॉस्पिटल ले जाया गया। वहाँ मेरे पैर में भी प्लास्टर चढ़ गया। दो महीने बाद मेरा प्लास्टर कटवाया तो मैं चलने लगा था। और दीदी भी ठीक थी। इस घटना की याद आते ही मेरे रोएं खड़े हो जाते हैं।

—पर्व तिवारी, पाँचवीं, रूदौली, फैज़ाबाद, उ. प्र.

—समीर, गोविन्दगढ़, पीसांगन, राजस्थान

ढोंगी

ढोंगी बाबा बाँध लँगोटी
जटा बढ़ाकर
तिलक लगाकर
अपना रूप सजाते बाबा
खाते हैं मिष्ठान-मलाई
सबका माल उड़ाते बाबा
धू-धू की आग में
हमको जलाते बाबा
पूजा करके
अपना ढोंग रचाते बाबा

—शिवा, 11 साल, सवाई माधोपुर, राजस्थान

मैं पंछी हूँ

मेरी इच्छा है कि मैं बनूँ एक पंछी
पेड़ों में खेल पाऊँगी लुका-छिपी
नीले गगन में उड़ूँगी
बादलों से बात करूँगी
ऊपर से इतना सुन्दर होगा नज़ारा
कि नीचे नहीं आना होगा दोबारा
नज़ारों का मैं कैसे करूँ बयान
दिखते हैं समुद्र, पहाड़ और बियाबान
सागर के पास जाऊँ तो दिखती है हिलोर
और वहाँ पर पवन करती है शोर
जब मैं जाती हूँ पर्वत के पास
तो होता है सुकून का एहसास
वन में जब भी मैं जाऊँ
अपने जैसे दोस्त पाऊँ
हम करते थोड़ी बातें
फिर अपने घोंसलों की ओर उड़ जाते
अगर मैं पंछी होती
तो मैं यह सब कर पाती
मगर मैं हूँ मनुष्य और नहीं हैं मेरे पास पर
इसलिए मैं हूँ अपनी कल्पना पर निर्भर

—सान्या, आठवीं,
शिक्षान्तर स्कूल, गुड़गाँव, हरियाणा

गिरगिट

—कोपल जैन, भोपाल, म. प्र.

—दिव्या, बारह वर्ष, मंज़िल, दिल्ली

चोर का कारनामा

हमारे गाँव में किसी घर में चोर आया था और उनके घर के लोग काम पर गए हुए थे। उसके घर में एक लड़की सोई हुई थी और वो लड़की उठ गई। उस चोर ने सोचा सभी को पता चल जाएगा करके उसने उस लड़की को पैसे दे दिए। लड़की दुकान चली गई और चोर ने एक बोरा धान को चोरी करके भाग निकला।

—हिमांशी ध्रुव, चौथी,
अजीमप्रेमजी स्कूल धमतरी, छत्तीसगढ़

चित्र: त्रिआम्बका कार्तिक

एक बूँद का सफर...

टी पी विश्वनाथन

एक बड़े-से समन्दर में एक बूँद मज़े से तैर रही थी। तभी उसके मन में आया कि क्यों ना वो भी बादलों के संग-संग उड़ने लगे!

उसने सोचा कितना मज़ा आएगा जब वो पहाड़ों के पार पहुँच जाएगी। और फिर एक दिन बारिश की बूँद बनकर किसी नदी में जा गिरेगी। फिर बहते-बहते दुबारा समन्दर में आ मिलेगी। बूँद यह जानने के लिए बेताब थी कि ज़मीन पर रहना होता कैसा होगा! वो आस लगाए बैठी रहती। एक दिन सचमुच उसके अरमानों को पंख लग गए। और वो भी कई सारी बूँदों के साथ भाप बन आसमान की ओर उड़ गई। एक बादल में कितने-कितने जल कण होते हैं, पर विशाल समन्दर के सामने तो ये कुछ भी नहीं!

बहुत-बहुत सारा चलने के बाद और बहुत-बहुत सारा देख लेने के बाद बादल धीरे-धीरे ठण्डे होने लगे। अब बारिश बन गिरने का समय आ गया था। पर जैसा उसने सोचा था वैसा हुआ नहीं! बूँद नदी की बजाय एक धान के खेत में जा गिरी। प्यासे खेत में धान के पौधे जाने कब से बारिश का इन्तज़ार कर रहे थे। तो जैसे ही अपनी यह बूँद मिट्टी में गिरी एक पौधे ने झट-से इसे सोख लिया। और यह बूँद एक धान के अन्दर घुस गई। धीरे-धीरे धान पकने लगा। फिर एक दिन किसान आया और धान काटने लगा। कटाई करते-करते कुछ दाने इधर-उधर बिखर गए। उनमें एक दाना वो भी था जिसमें हमारी बूँद थी। वो उस दाने में ही रही आई। न अँधेरे का होश, न रोशनी का पता। कुछ दिनों बाद एक मुर्गी आई और दाना चुगने लगी। चुगते-चुगते वो इस बूँदवाले दाने को भी चुग गई। और इस तरह वो बूँद एक अण्डे के अन्दर पहुँच गई।

"फिर क्या हुआ?" उन्नीकुट्टन ने उत्सुकता से पूछा।

"अरे बच्चू, ये वही अण्डा तो था जिसे उबालकर तुमने अभी-अभी खाया है..."

मलयालम से अनुवादः अनु एलैक्ज़ेंडर

यही चित्र क्यों बनाया?

यहाँ मैंने एक फैंटेसी को चित्र में ढाला है। खुद को एक बूँद मान। इसमें बड़ा मज़ा था। बस कल्पना ही कल्पना थी। विचारों की धुँध लीए कल्पना। इसलिए मैंने धुआँ-धुआँ-सा दिखाया है। इसके रंग काफी हद तक आसपास से आए हैं। वास्तविकता से जुड़े। पर फिर भी इसमें अवास्तविकता के भाव हैं। शायद मेरे ख्यालों-कल्पनाओं ने उन्हें ये रंगत दे डाली है। यह कहानी मुझे कल्पना के हिण्डोले पे ले गई। और वहीं बैठ मैंने इसे ये रंग दिए। धुएँ-धुएँ से रंग और वैसी ही रुकती, अटकती, चलती लकीरें। कितना सुन्दर है आश्चर्यलोक में यूँ विचरना...

त्रिआम्बका

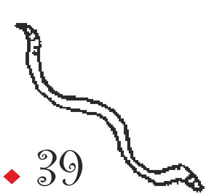

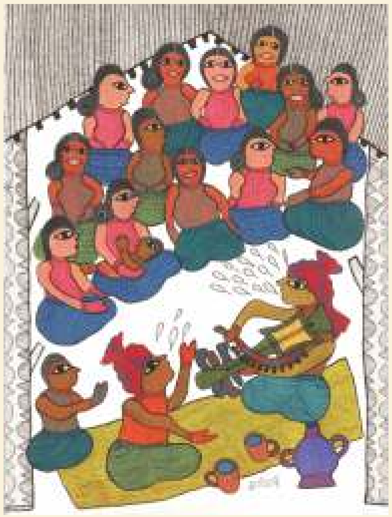

एक लोककथा

(पेज 11 का शेष भाग)

छोटे भाई को पता ही नहीं चला कि कब गोद में रखा बाजा उसके कँधे पर आ गया और कब हथौरी उस पर भरही चिड़िया की उड़ान की तरह लहरियाँ बनाने लगी। उसे तो यह भी पता नहीं चला कि कब गोंड राजा और उसकी सारी प्रजा उसके चारों ओर आकर बैठ गई।

छोटा भाई डूबकर बड़ा देव को जगाने का गीत गाने लगा। बड़ा देव जैसे गोंड राजा के सपने में आए थे वैसे ही छोटे भाई के मन की गहराई में आए और फिर इस बार वे उसके बाजे में समा गए। छोटा भाई भाव-विभोर हो गाता रहा और लोग भी मंत्रमुग्ध से बैठे सुनते रहे। बड़ा देव ने चूँकि उस बाजे का बाना या रूप ले लिया था इसीलिए वह (उनका) बाना कहलाया। तब से छोटा भाई परधान, गोंड परिवारों में मृत्यु, जन्म आदि से जुड़े खास मौकों पर बड़ा देव को गीत गाकर जगाता है। जगाने से मतलब है उन्हें प्रसन्न करना ताकि वे घर-परिवार, गाँव-मोहल्ले के दुख-परेशानियाँ दूर कर दें।

चूँकि बाजे में से संगीत भरही चिड़िया के गान को देख-सुनकर फूटा था इसलिए लोग भरही चिड़िया को कभी-कभी परधान भी कह देते हैं। मज़े की बात यह कि भरही चिड़िया एक बार उड़ान भरते हुए गान शुरू करती है तो कोई घण्टे भर तक लगातार गाती रहती है और किसी चट्टान पर बैठी एक दूसरी कसंगर चिड़िया इस पूरे दौरान उसका गान सुनती रहती है – जैसे उस रोज़ गोंड राजा और उसकी सारी जनता ने सुना था। इसीलिए मध्यप्रदेश के डिण्डोरी ज़िले के लोग कसंगर चिड़िया को भरही का गान सुनता देख उसे गोंड कहकर भी बुलाते हैं।

मंगल दी गल....

(पेज 23 का शेष भाग)

उस वक्त यान जितना दूर था वहाँ पर प्रकाश गति (299792458 मीटर प्रति सैकेंड) से भेजे हुए रेडियो संकेत भी साढ़े बारह मिनट में पहुँचते हैं। और जिस समय यह सब होना था उस वक्त मंगलयान मंगल के दूसरी तरफ था। इसरो के वैज्ञानिकों ने सारे निर्देश पहले ही यान के कम्प्यूटर को दे दिए थे और मंगलयान उन निर्देशों का पालन करता गया था। सफलता का पहला संकेत तब मिला जब इसरो ने घोषणा की कि मंगलयान के इंजनों चालू हो गए हैं। 24 सितम्बर को सुबह सात बजकर इकतालीस मिनट पर मंगलयान ने मंगल की कक्षा में स्थापित होने के संकेत दिए और सभी लोगों के चेहरे खिल उठे। अन्तरिक्ष में यह अहम उपलब्धि हासिल कर भारतीय अन्तरिक्ष वैज्ञानिकों ने इतिहास रच दिया था।

कुछ ही समय के बाद इसरो ने मंगलयान द्वारा भेजा एक चित्र जारी किया और कहा – मंगल की पहली तस्वीर 7300 किलोमीटर की ऊँचाई से। वहाँ का नज़ारा बेहद सुन्दर है ।

अपने उपकरणों के साथ मंगलयान कम से कम 6 माह तक दीर्घ वृत्ताकार पथ पर घूमता रहेगा और जुटाए आँकड़े पृथ्वी पर भेजता रहेगा। अभी इसमें काफी ईंधन बचा हुआ है। अपने पथ में परिवर्तन कर यह मंगल के और करीब चक्कर लगा सकता है।

मंगल यान का उद्देश्य लाल ग्रह की सतह तथा उसके खनिज अवयवों का अध्ययन करना तथा उसके वातावरण में मीथेन गैस की खोज करना है। पृथ्वी पर जीवन के लिए मीथेन एक महत्वपूर्ण रसायन है। पृथ्वी के वातावरण में मौजूद मीथेन का 90 प्रतिशत हिस्सा जीवित प्राणी बनाते हैं। मंगल पर अगर मीथेन मिलती है तो यह मंगल पर जीवन की सम्भावना होने का एक मज़बूत संकेत होगा। लेकिन यह पक्का संकेत फिर भी नहीं होगा।

मंगलयान अपना काम शुरू कर चुका है। मार्स कलर कैमरा मंगल के चित्र धरती पर भेज चुका है। धीरे-धीरे बाकी सभी उपकरण भी काम करना शुरू कर देंगे।

योजना के अनुसार मंगल ग्रह के चारों ओर की कक्षा में इसके कम से कम 160 दिन तक काम करने की उम्मीद है। लेकिन कभी-कभी अन्तरिक्ष यान अपने तय समय से बहुत ज़्यादा समय तक सुचारू रूप से काम करते रहते हैं। सैद्धान्तिक रूप से यान हमेशा के लिए मंगल की परिक्रमा करता रहेगा। नासा का मानना था कि 1977 में छोड़ा गया वायेजर यान सिर्फ 5 साल तक काम करेगा। लेकिन आज भी यह सौरमण्डल के पार से अपने संकेत भेजता है।

चित्र पहेली
बाएँ से दाएँ
ऊपर से नीचे

RNI क्र. 50309/85 डाक पंजीयन क्र. म.प्र. / 261 / भोपाल / 2012-14

तितलियों के पंख

ऊँट रंग के
भैंस रंग के
गौ रंग के पंख
हमने देखे तितलियों के
सौ रंग के पंख

हरा गेहूँ
पीली सरसों
जौ रंग के पंख
हमने देखे तितलियों के
सौ रंग के पंख

शाम पंखी
रात पंखी
भोर पंखी पंख
हमने देखे तितलियों के
मोर पंखी पंख

दानेदार
गुब्बारे की छापदार
धारीदार पंख
हमने देखे तितलियों के
पानीदार पंख

प्रभात

चित्रः कनक

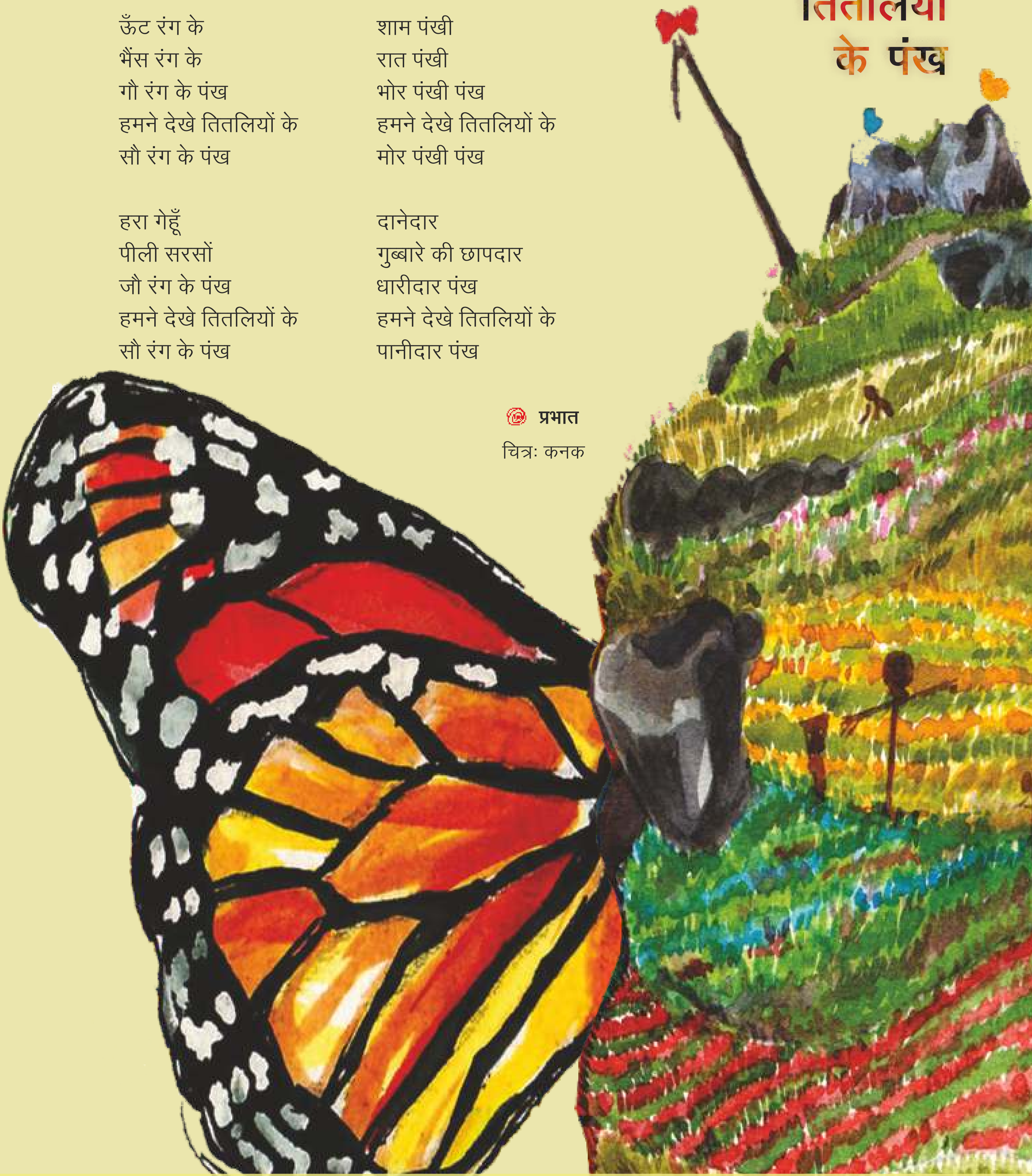

प्रकाशक एवं मुद्रक अरविन्द सरदाना द्वारा स्वामी रैक्स डी रोज़ारियो के लिए एकलव्य, ई-10, शंकर नगर, 61/2 बस स्टॉप के पास, भोपाल 462016, म.प्र. से प्रकाशित एवं आर. के. सिक्युप्रिन्ट प्रा. लि. प्लॉट नम्बर 15-बी, गोविन्दपुरा इंडस्ट्रियल एरिया, गोविन्दपुरा, भोपाल - 462021 (फोनः 0755 - 2687589) से मुद्रित।
सम्पादकः सुशील शुक्ल